भृगुवंश नाटक

महर्षीणां भृगुरहम्

महर्षियों में मैं भृगु हूँ

—भगवान् कृष्ण, गीता, १०.२५

डॉ. दयानन्द भार्गव

भृगुवंश नाटक

डॉ० दयानन्द भार्गव
एम.ए., पी-एच.डी.

आचार्य एवम् अध्यक्ष
संस्कृत विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
जोधपुर

भार्गव-सभा, जयपुर

भृगुवंश नाटक
डॉ० दयानन्द भार्गव

प्रकाशक
भार्गव सभा
एच-३६, टैगोर मार्ग
बनी पार्क, जयपुर-६

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : जनवरी १९८९

मूल्य : बीस रुपये मात्र

मुद्रक : जोधपुर विश्वविद्यालय मुद्रणालय, जोधपुर (राजस्थान)

विषय-सूची

प्राक्कथन	:	क
आमुख	:	ग
पात्र-परिचय	:	झ
भृगुवंश नाटक		
प्रस्तावना	:	१
प्रथम अङ्क (भृगु)	:	२
द्वितीय अङ्क (च्यवन)	:	१३
तृतीय अङ्क (परशुराम)	:	२१
चतुर्थ अङ्क (हेमू)	:	३२
पञ्चम अङ्क (चरणदास)	:	४२
स्रोत सन्दर्भ	:	५२
नाटककार का वंश-वृक्ष	:	५३
भृगुवंश नाटक : एक आलोचनात्मक मूल्याङ्कन	:	५५
भृगुवंश नाटक पर कतिपय विशिष्ट सम्मतियाँ	:	५७
परिशिष्ट—रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि भार्गव थे	:	५८

मत्स्यपुराण तथा महाभारत के इस बाह्यसाक्ष्य की पुष्टि स्वयं रामायण के अन्तः साक्ष्य से होती है। उत्तरकाण्ड में लव कुश ने राम को रामायण की कथा सुनानी प्रारम्भ की तो राम ने यह जिज्ञासा की कि इस महाकाव्य के रचयिता कौन हैं? लव कुश ने राम के जिज्ञासा के उत्तर में कहा—

संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्
उपाख्यानशतं चैव **भार्गवेण तपस्विना**

—श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, द्वितीय भाग, गीताप्रेस, गोरखपुर
(विक्रम सम्वत् २०४२) उत्तरकाण्ड, अध्याय ९४ श्लोक २४।

"२४००० श्लोकों वाला तथा सौ कथाओं वाला यह काव्य तपस्वी भार्गव ने बनाया।"

इन समस्त साक्षियों पर लाहौर से सम्वत् २००३ में डॉ विश्वबन्धु द्वारा सम्पादित वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तरीय संस्करण के अन्तिम श्लोक ने मानो अन्तिम निर्णयात्मकता की मोहर ही लगा दी—

इदमाख्यानमायुष्यं रामाख्यं सोत्तरं स्मृतम्
कृतवान् **भार्गवो धीमान्** ब्रह्म चैवाभ्यपद्यत ॥
—अध्याय ११२, श्लोक ३१ ॥

"यह आयुप्रद रामायण काव्य उत्तरकाण्ड सहित मनीषी भार्गव ने बनाया तथा ब्रह्म की प्राप्ति की।"

भृगुवंश नाटक में वाल्मीकि जैसे भार्गव का समावेश न कर पाने का प्रायश्चित कदाचित् वाल्मीकि पर एक स्वतन्त्र नाटक लिखकर करना होगा। भृगुकुलभूषण कविकुलशिरोमणि वाल्मीकि को प्रणाम—

राम रामेति कूजन्तं मधुरं मधुराक्षरम्
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् ॥

प्राक्कथन

भृगुवंश सम्बन्धी उपलब्ध साहित्य की शृङ्खला में डॉ० दयानन्द भार्गव द्वारा रचित नाटक "भृगुवंश" एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होगी।

नाटक किसी भी गहन एवं असाधारण विषय के प्रचार एवं प्रसार का सशक्त माध्यम होता है। इसी उद्देश्य को लेकर इस नाटक के प्रकाशन का प्रयास किया गया है। यद्यपि हमारे पूर्वज महर्षि भृगु एवं महर्षि च्यवन आदि के विषय में विद्वानों तथा साहित्यकारों को पर्याप्त ज्ञान प्राप्त है, किन्तु हमारी जाति के सर्व साधारण महानुभावों, महिलाओं एवं युवकों को सम्भवतः एतद्विषयक समुचित ज्ञान न तो उपलब्ध है और न उन्हें उसे प्राप्त करने का अवसर ही है। आशा की जा सकती है कि इस नाटक के अध्ययन एवं मञ्चन द्वारा वह ज्ञान सहज ही में प्राप्त हो जायेगा एवं लम्बे समय तक हृदय पर उसकी छाप बनी रहेगी।

इस नाटक की एक विशेषता यह भी है कि इसका मञ्चन समयानुसार एक साथ अथवा पृथक् पृथक् अङ्कों में भी किया जा सकता है।

यह हमारा सौभाग्य ही था कि डॉ० दयानन्द भार्गव जैसे ख्याति प्राप्त विद्वान् ने इस कार्य को सम्पादित करना स्वीकार किया और समय पर नाटक का लेखन कार्य समाप्त भी किया। हम उनके आभारी हैं।

हमें खुशी है कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, देहली में भारतीय भाषाओं के आचार्य डॉ० नामवरसिंह ने नाटक का अध्ययन कर "एक आलोचनात्मक मूल्याङ्कन" प्रस्तुत किया है, जिससे कि इस नाटक का रूप और भी निखर कर सामने आया है। हम उनके भी आभारी हैं।

हम भार्गव सभा शताब्दी समारोह समिति, प्रकाशन उप-समिति एवं विशेषरूप से भार्गव सभा के प्रधान मन्त्री पं० कैलाशनाथजी के आभारी हैं, जिनके सक्रिय सहयोग एवं समय-समय पर मार्ग-दर्शन के बिना इस नाटक का प्रकाशन सम्भव नहीं हो सकता था।

शान्ति प्रसाद
संयोजक
भार्गव सभा शताब्दी समारोह
इतिहास प्रकाशन उप-समिति
जयपुर (राजस्थान)

'शान्ति शिखर'
बी-१६९, गाँधीनगर मार्ग
जयपुर (राजस्थान)
१ जनवरी, १९८९ ई.

आमुख

भृगुवंश भारतीय इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, पुराण, महाभारत तथा स्मृति भृगुवंश के प्रसङ्गों से परिपूर्ण हैं। इस साहित्य का आलोड़न कर डॉ० जयन्ती पाण्डा ने "Bhṛgus—A Study"[1] नामक शोधग्रन्थ १९८४ में दिल्ली से प्रकाशित किया जिसके २०० पृष्ठों में वेद, पुराण तथा महाभारत के आधार पर भृगुवंश का प्रामाणिक लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। भृगुवंश पर हुए अनुसन्धानों की एक सूची भी इस ग्रन्थ के अन्त में दी गई है जिनमें निम्न पाँच का विशेष उल्लेख करना उचित होगा :

1. Padmanabhaiya, A. : 'Ancient Bhṛgus', *Journal of the Oriental Research,* Madras, vol. V, part I and II (1931), pp. 55-67, 80-100.
2. Sukthankar, V.S. : 'Epic Studies VI : The Bhṛgus and the Bhārata : A Text-Historical Study', *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute,* vol. XVIII (1936-37), pp. 1-76.
3. Shende, N.J. : *Bhṛgvaṅgiras Element in the Mahābhārata,* Ph.D. dissertation submitted to the University of Bombay, 1940.
4. Rahurkar, V.G. : 'Bhṛgu and the Bhṛgus in the Vedic and the post-Vedic Literature,' *CASS Studies,* no. 3, Poona, (1976) pp. 9-24.
5. Goldman, Robert, P. : *Gods, Priests and Warriors, The Bhṛgus of the Mahābhārata,* New York, 1977.

पुरानी पद्धति से लिखे ग्रन्थों में बेलनगञ्ज, आगरा से सम्वत् १९२६ में प्रकाशित ज्वालाप्रसाद भार्गव की 'भृगुकुलदीपिका' उल्लेखनीय है जिसका आधार वैदिक साहित्य न होकर महाभारत तथा मनुस्मृति है। यह शोध-प्रबन्ध न होकर संग्रह-ग्रन्थ है जिसमें मूल-संस्कृत श्लोकों के साथ पुरानी हिन्दी में श्लोकों का अर्थ भी दिया गया है। यह इतिहास कम और धर्मग्रन्थ अधिक है।

एक-एक भृगुवंशी पर लिखे गये साहित्य में सर्वाधिक साहित्य परशुराम पर है। उसमें से उल्लेखनीय कृतियाँ निम्नाङ्कित हैं :

1. Karve, Irawati : 'The Parshurama Myth', *Journal of the University of Bombay,* vol. I, (1932), pp. 115-139.
2. Janaki, S.S. : *Paras'urāma, Purāṇa* vol. VIII, no. 1 January (1966) pp. 52-88.
3. Goldman, R.P. : *Some Observations on the Paras'u of Paras'urāma,* 1972.

---

१ प्राप्ति स्थान : D.K. Publishers' Distributors, 1, Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi-110002.

4. Arulchelvam, Maheshwari M.: 'Paraśurama, History and Legend', *The Journal of Religious Studies*, vol. IX, nos. 1 and 2, (1981), Patiala, pp. 62-70.

इसके अतिरिक्त श्री धनप्रसाद मुन्शी ने 'भार्गव ब्राह्मणों का इतिहास' लिखा जिसकी प्रशंसा श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने अपनी आत्मकथा 'आधे रास्ते' में की है।

नाटककार के भृगुवंश सम्बन्धी स्वयं के अनुशीलन के निष्कर्ष कुछ इस प्रकार हैं :

भृगुवंशी अग्नि के उपासक थे जो रथ-निर्माण जैसे व्यवसाय करते थे। ये उनके शिल्पी होने का प्रमाण है। रथ की आवश्यकता योद्धा वर्ग को सर्वाधिक थी। भृगुवंशियों के योद्धा क्षत्रियों से विवाह सम्बन्ध भी होते थे। भृगुवंशी अग्नि के उपासक थे—इसका प्रतीकार्थ यह है कि भृगुवंशी तेजस्वी तथा उग्र स्वभाव के थे। भृगुवंशियों ने अग्नि का आविष्कार किया था। अग्नि को अरणियों से उत्पन्न करने में शारीरिक बल की आवश्यकता होती है और भृगुवंशियों का अग्नि से सम्बन्ध उनके बलवान् होने का सूचक है। अग्नि के बिना शस्त्र नहीं बन सकते। अग्नि के सम्बन्ध के कारण भृगुवंशी शस्त्र-निर्माण से भी जुड़े हुए थे। भृगुओं का सम्बन्ध मत्स्य प्रदेश (अलवर के आस-पास के प्रदेश) से वैदिककाल में भी था क्योंकि मत्स्य प्रदेश में होने वाले दाशराज्ञ युद्ध में भृगुओं ने भी भाग लिया था। वेद के १४वीं शताब्दी के भाष्यकार सायण ने भृगुओं को कर्मयोगी बताया है।

भृगुवंशी धर्म का सम्बन्ध परलोक से न जोड़कर समाज से जोड़ते थे। इसीलिए उनके विचार रूढ़िवादियों से मेल न खाकर क्रान्तिकारी थे। भृगुवंशी जहाँ तलवार के धनी थे वहाँ कलम के भी धनी थे। अनेकानेक वैदिक सूक्त भार्गव ऋषियों ने ही बनाए थे। भृगुवंशियों का सम्बन्ध देव तथा असुर दोनों से था।

प्रस्तुत नाटक के प्रथम तीन अङ्कों का निर्माण प्राचीनकाल में भृगुवंशियों की उपर्युक्त विशेषताओं को ही उजागर करने के लिए हुआ है। भृगुवंश की कथा को सृजनात्मक साहित्य का विषय इस नाटक में प्रथम बार बनाया गया हो, ऐसा नहीं है। डॉ० राँगेय राघव ने अपने उपन्यास "महायात्रा : गाथा, अँधेरा रास्ता" में परशुराम पर एक पूरा अध्याय कथानक के रूप में लिखा है।[1] इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में भृगु[2], च्यवन[3], शुक्राचार्य[4] तथा मार्कण्डेय[5] जैसे भृगुवंशियों पर खोजपूर्ण टिप्पणियाँ दी गयी हैं।

चीन के आक्रमण के समय रामधारीसिंह दिनकर ने 'परशुराम की प्रतीक्षा" काव्य लिखकर परशुराम के माध्यम से ही राष्ट्र की अस्मिता को ललकारा था। नाटककार के पास रामधारीसिंह दिनकर की ही आवाज़ में पढ़ी गयी इस पूरी कविता की टेप सुरक्षित है।

वैदिक तथा पौराणिक काल के भृगुवंशियों पर इतनी चर्चा के बाद अब हम मध्यकाल के उस अंश पर आते हैं जिस काल में भार्गव ढूसर कहलाने लगे थे। यह विषय विवादास्पद है कि ये ढूसर

---

१. किताब महल, इलाहाबाद, १९६७, पृ० ५२१-५२८
२. पृ० ८६९
३. पृ० ८७१
४. पृ० ८७२
५. पृ० ८७७

उन्हीं भार्गवों के वंशज हैं जिन भार्गवों का सम्बन्ध वैदिककाल के च्यवन या पौराणिक काल के परशुराम से रहा है। इस बारे में निःसन्दिग्ध रूप से कुछ भी कहने में नाटककार समर्थ नहीं है, किन्तु इतना अवश्य है कि च्यवन की तपोभूमि ढोसी तथा दाशराज्ञ युद्ध की भूमि मत्स्य-प्रदेश वहीं है जहां से डूसरों का उद्गम हुआ। यदि यह मान लें कि ये डूसर वैदिक भार्गवों के वंशज नहीं हैं तो प्रश्न होगा कि इस प्रदेश के भार्गवों का क्या हुआ ? क्योंकि इस प्रदेश में कोई अन्य जाति तो भार्गव नाम की है नहीं, अतः डूसरों को ही भार्गव मान लेना अनुचित न होगा फिर भी नाटककार ने इस विषय का अनुसन्धान न करके वही मान लिया है जो आज डूसर मान रहे हैं। इससे नाटक की साहित्यिकता पर कोई आँच नहीं आती। भारतीय समाज में जितना वर्णसङ्कर हुआ है, उसके रहते आज किसी भी जाति को वैदिक काल के किसी ऋषि से शुद्ध रूप में जोड़ पाना तो वैसे भी सम्भव नहीं है। इसके बावजूद सभी जातियाँ वैदिक काल के किसी ऋषि से अपने को जोड़कर ही अपनी जातीय अस्मिता स्थापित कर पाती हैं।

अब हम डूसर नाम से प्रसिद्ध नाटक के चरित नायक हेमू तथा सन्त चरणदास पर कुछ विचार करेंगे। हेमू पर उपलब्ध सभी सामग्री का एक सुन्दर विश्लेषण श्री मोतीलाल भार्गव ने १३५ पृष्ठों में अपने "हेमू और उनका युग" नामक ग्रन्थ में किया है।[1] १९७२ में श्री मोतीलाल जी ५५ वें अखिल भारतीय भार्गव सम्मेलन के अवसर पर देहली से प्रकाशित होने वाली स्मारिका में इस ग्रन्थ का सारांश-जैसा ४ पृष्ठों में दे दिया है। वर्तमान नाटक के चतुर्थ अङ्क का आधार श्री मोतीलाल भार्गव द्वारा दिया गया विवरण ही है। क्योंकि उन्होंने अपने ग्रन्थ का आधार मूल स्रोत ग्रन्थों को ही बनाया है, अतः नाटककार ने मूल स्रोत ग्रन्थों को स्वयं देखने के श्रम की पुनरावृत्ति न करके श्री मोतीलालजी के विवरण को प्रामाणिक माना है। यद्यपि मोतीलालजी के ग्रन्थ में भी कुछ विवाद के बिन्दु हैं किन्तु नाटककार के लिए वे बिन्दु ऐसे नहीं थे कि उन पर अन्तिम निष्कर्ष निकाले बिना नाटक लिखा न जा सके। उन बिन्दुओं पर बहस को इतिहासकारों के लिए छोड़कर नाटककार ने निम्नमूल ढाँचे को स्वीकार करके चतुर्थ अङ्क का निर्माण किया है :

हेमू के पिता का नाम राय पूरनमल था जिन्हें ८० वर्ष की अवस्था में इस्लाम स्वीकार करने पर मजबूर किया गया। इन्कार करने पर उन्हें फांसी की सजा दे दी गयी। हेमू की पत्नी शत्रुओं के हाथ न लग कर भागने में समर्थ हो गयी। अबुलफजल ने अकबरनामे में हेमू को धोखेबाज और झूठा बतलाया है लेकिन सच्चाई तो यह थी कि वह अपनी व्यापार कुशलता और युद्ध कुशलता के आधार पर उन्नति करता गया और एक के बाद एक विजय प्राप्त करता रहा। अकबरनामे के अनुसार हेमू रूपवान् नहीं था। अकबरनामे में ही हेमू को डूसर बताया गया है।

इस्लामशाह के समय में हेमू को मान्यता मिली। इस्लामशाह के बाद सुल्तान मुहम्मद आदिल ने इस्लामशाह के पुत्र फीरोज खाँ की हत्या कर दी। फीरोज खाँ आदिल का भानजा था और नियामतउल्ला के "मखजन अफगानिया" के अनुसार आदिल ने अपनी बहन बीबी बाई की सब प्रार्थनाओं को ठुकरा कर उसकी हत्या की थी। आदिल की ऐसी करतूतों ने उसे बहुत कमजोर बना दिया। इस कमजोरी की हालत में उसके पास हेमू का सहारा लेने के अतिरिक्त कोई उपाय शेष न था। उसने हेमू को अपना प्रधान मन्त्री बना दिया। हेमू आदिल की तरफ से जहाँ भी लड़ा विजय प्राप्त करता गया।

---

१. भारतीय प्रकाशन मन्दिर, लखनऊ, १९६०

हुमायूँ की मृत्यु के बाद अकबरनामे में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि "दिल्ली हेमू के हाथों में आ चुकी थी।" अकबरनामे में हेमू को हर तरह नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हुए भी हेमू की युद्धकला की प्रशंसा की गई है। अल बदाऊनी की मुन्तखाब-उल्-तवारीख नामक कृति के अनुसार दिल्ली की लड़ाई में अलवर के हाजी खाँ ने हेमू की सहायता की थी। बदायूनी के अनुसार ही पानीपत की लड़ाई में हेमू १५०० हाथी लेकर गया था। हेमू इन हाथियों के खाने पीने का बहुत ख्याल रखता था। अबुलफजल ने इन हाथियों की युद्ध सामर्थ्य की बहुत प्रशंसा की है।

बदाऊनी और अबुलफजल दोनों ने ही हेमू के युद्धभूमि में तीर लगने की दुर्घटना का उल्लेख किया है। बदाऊनी के अनुसार हेमू को अकबर ने मारने से इन्कार कर दिया और बैरम खाँ ने ही उसे मारा।

इतिहास की इन मोटी मोटी रेखाओं के खाके में कम से कम रंग भरते हुए नाटककार ने चतुर्थ अङ्क में हेमू की इस प्रेरणा के स्रोत को उभारने की कोशिश की है कि हेमू एक साधारण परिवार का व्यक्ति होकर भी भारत के सम्राट् पद तक कैसे पहुँच गया। आपस में ही लड़ते रहने वाले अफगानों और राजपूतों को एकता के सूत्र में पिरोने का काम भी केवल लालच या डर दिखा कर नहीं किया जा सकता। हेमू के लक्ष्य देश रक्षा की उदात्त भावना से अवश्य अनुप्राणित थे भले ही उस समय राष्ट्रीयता की अवधारणा इतनी स्पष्ट न रही हो। हेमू की जीवनी से यह स्पष्ट अवश्य होता है कि कुल, जाति या पद इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितना पुरुषार्थ। हेमू का उदाहरण संसार के इतिहास में अपने ढँग का अनोखा है।

हेमू का समय १५०० ईसवी से १५५६ ईसवी के बीच का अनुमानित किया जाता है।

पाँचवें अङ्क के आधार ग्रन्थों में मुख्य स्वयं चरणदासजी का "भक्तिसागर"[1] तथा उनके शिष्य जोगजीत की लिखी उनकी जीवनी "लीलासागर"[2] का ही सहारा लिया गया है।

द्वितीय श्रेणी की सामग्री में चरणदासजी द्विशताब्दी निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका (दिल्ली १९८२) के होते हुए भी उसका आधार लेना अनावश्यक माना गया क्योंकि उसकी सब सामग्री प्रथम कोटि के ग्रन्थों पर ही आश्रित है और उनमें दी गयी सामग्री के अतिरिक्त कोई नयी सूचना उपलब्ध नहीं करवाती।

भक्तिसागर में दी गयी दार्शनिक पृष्ठभूमि तो ठीक है किन्तु लीलासागर में दी गयी चमत्कारिक घटनाओं ने नाटककार को एक प्रकार की दुविधा में ही डाल दिया। यह सत्य है कि सन्त चरणदासजी ने योग के रहस्यों का जितना प्रामाणिक ढँग से उल्लेख किया है उसके आधार पर उन्हें एक सच्चा योगी माना जा सकता है। यह भी सच है कि स्वयं पतञ्जलि ने अपने योगसूत्र के विभूतिपाद में योगी को चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त होने की बात की है और कम से कम कोई आर्यसमाजी विचारधारा का व्यक्ति भी पतञ्जलि के योगसूत्र को अप्रामाणिक नहीं कह सकता क्योंकि स्वामी दयानन्दजी ने उसे आर्ष ग्रन्थ माना है। किन्तु आज प्रश्न उस पीढ़ी का है जो शास्त्रोक्त किसी भी ऐसी बात में विश्वास नहीं करती, जिसका वैज्ञानिक प्रमाण न हो।

प्राचीन शास्त्रों को छोड़ दें तो परामनोविज्ञान आज टेलीपैथी की चर्चा बड़े प्रामाणिक रूप में करता है। सच तो यह है कि परामनोविज्ञान ने अनेक ऐसे तथ्यों की व्याख्या तर्कसङ्गत रूप में प्रस्तुत

---

१. दिल्ली, विक्रम सम्वत् २०२७

२. जयपुर, विक्रम सम्वत् २०२५

की है जिन्हें आज तक भारतीय केवल अन्धविश्वास के रूप में मानते रहे थे। सन्त चरणदास के जीवन की घटनाओं को आज इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिये। नाटककार ने इस दिशा में छोटा-सा श्रीगणेश किया है।

नाटककार की दृष्टि में सन्त चरणदास के जीवन का महत्त्व चमत्कारिक घटनाओं में निहित नहीं है। उनका महत्त्व उनकी सादगी, सेवा-भावना, विनम्रता तथा सबको समान समझने की उस प्रवृत्ति में है जिसकी आवश्यकता जितनी सन्त चरणदास के समय में थी उतनी ही आज भी है। नाटककार ने बिना अप्रामाणिक बने सन्त चरणदास की इसी प्रासङ्गिकता को उभारने का प्रयत्न किया है।

इस नाटक पर विविध प्रतिक्रियाओं का होना स्वाभाविक है। उदाहरणतः यह कहा जा सकता है कि इस नाटक का कोई एक नायक ही नहीं है और इसकी कथावस्तु हजारों वर्षों में फैली हुई है। किन्तु यह आरोप तो कालिदास के महाकाव्य रघुवंश पर भी लगाया जा सकता है। जैसे रघुवंश का नायक कोई एक पुरुष विशेष न होकर रघुवंश ही है उसी प्रकार भृगुवंश नाटक का नायक भृगुवंश ही है।

इस नाटक का मूल उद्देश्य जातीय अस्मिता का भाव जगाना है और नाटककार को स्वयं इस नाटक के लिए सामग्री खोजते समय सदा यह आभास होता रहा है कि भृगुवंशी इस देश की संस्कृति में रटी पिटी लीक से हटकर कुछ विशिष्ट योगदान करते रहे हैं। उस योगदान को अङ्कित करते करते ही नाटक के ये पांच अङ्क पूरे हो गये। प्रामाणिक कथ्य तथा तथ्य इतने सुदृढ़ और विस्मयजनक थे कि पाठकों को यह विश्वास दिलाना कठिन प्रतीत हो रहा है कि इस नाटक में कहीं भी अतिरञ्जना नहीं की गयी; कहीं न्यूनोक्ति भले ही हो।

नाटक के निर्माण में अजस्र प्रेरणा देती रहीं सहधर्मिणी श्रीमती लक्ष्मी भार्गव एम. ए.। आचार्य डा. नामवरसिंह प्रभृति साहित्य-मर्मज्ञों द्वारा किये गये नाटक के मूल्याङ्कन ने नाटककार को अपनी कृति के प्रति आश्वस्त किया। नाटक के शुद्ध टङ्कण में श्री ब्रजेशकुमारसिंह का, शुद्ध मुद्रण में सहकर्मी डॉ. श्रीकृष्ण शर्म्मा तथा श्री अबीरचन्द ओझा का, साजसज्जा में श्री मोहनस्वरूप माहेश्वरी का तथा सुरुचिपूर्ण त्वरित मुद्रण में श्री ताराचन्द गर्ग का योगदान इन मित्रों के अकृत्रिम स्नेह का सूचक है। श्री शीन काफ निजाम ने नाटक के उर्दू-बहुल अंश को संवारा तो श्री मदनमोहन माथुर ने नाटक की मञ्चनीयता को उभारा। इस सारस्वत-यज्ञ के पुरोधा बने डॉ. शान्तिप्रसाद प्रभृति भार्गव-सभा के पदाधिकारी। इस प्रकार यह नाटक व्यष्टि का न रह कर समष्टि का बन गया और आज मैं इसे समष्टि को ही समर्पित कर रहा हूँ।

जोधपुर
गीता जयन्ती, सम्वत् २०४५

— दयानन्द भार्गव

भृगुवंश

पात्र-परिचय

प्रस्तावना

नट	:	सूत्रधार
नटी	:	सूत्रधार की पत्नी

प्रथम अङ्क

भृगु	:	भृगुवंश के आदिपुरुष
पुलोमा	:	भृगुवंश की दैत्यवंशी पत्नी
च्यवन	:	भृगु के पुत्र
और्व	:	च्यवन के पुत्र
शुक्र	:	भृगु के पुत्र
त्वष्टा	:	शुक्र के पुत्र
देवकन्या	:	त्वष्टा की देववंशी पत्नी
प्रथम अप्सरा	:	देवकन्या की अन्तरङ्ग सखी
द्वितीय अप्सरा	:	देवकन्या की अन्तरङ्ग सखी

द्वितीय अङ्क

च्यवन	:	भृगु के पुत्र
शर्याति	:	आर्यावर्त्त का सम्राट्
सुकन्या	:	शर्याति की पुत्री
प्रथम अश्विनीकुमार **द्वितीय अश्विनीकुमार**	:	दो जुड़वाँ भाई, देवताओं के वैद्य
इन्द्र	:	देवराज
मद	:	शुक्र का अनुयायी असुर

तृतीय अङ्क

सहस्रार्जुन	:	आर्यावर्त्त का सम्राट्
अमात्य	:	सहस्रार्जुन का वंशपरम्परागत मन्त्री
सेनापति	:	सहस्रार्जुन का सेनापति
सामन्त	:	सहस्रार्जुन के अधीन सामन्त
पुरोहित	:	सहस्रार्जुन का भार्गव पुरोहित

अनुचर प्रथम अनुचर द्वितीय	:	सहस्रबाहु के अनुचर
जमदग्नि	:	एक भार्गव ऋषि
परशुराम	:	जमदग्नि का पुत्र, विष्णु का अवतार
अध्यक्ष प्रथम अध्यक्ष द्वितीय	:	परशुराम के शस्त्रागारों के अध्यक्ष
बटुक	:	परशुराम का ब्रह्मचारी शिष्य
योद्धा	:	सहस्रबाहु का सैनिक

चतुर्थ अङ्क

हेमू	:	एक भार्गव व्यापारी, बाद में दिल्ली सम्राट्
हेमवती	:	हेमू की पत्नी
पूरनमल	:	हेमू का पिता
मुहम्मद आदिल	:	अफगान का राजा
मन्त्री	:	आदिल का मन्त्री
सेनापति	:	आदिल का सेनापति
हाजी खाँ	:	हेमू का सहायक एक अफगान सेनापति
बुझाररात्र	:	हेमू का भाई
रमैया	:	हेमू का भानजा
महीपाल	:	हेमू का भतीजा
अकबर	:	मुग़ल सम्राट्
बैराम खाँ	:	अकबर का गुरु-संरक्षक

पञ्चम अङ्क

चरणदास	:	एक भार्गव सन्त
शुकदेव	:	चरणदास के गुरु, चिरजीवी, चिरयुवा, केवल लँगोट लगाये रहने वाले ब्रह्मचारी
मोहम्मदशाह	:	दिल्ली सम्राट्
अमीर	:	मोहम्मदशाह का सामन्त
नादिरशाह	:	दिल्ली का आक्रान्ता आततायी सम्राट्
जोगजीत	:	चरणदास का जीवनी लेखक सन्त
सहजोबाई	:	चरणदास की शिष्या
यात्री	:	पदयात्री
यात्री	:	दूसरा पदयात्री
बूढ़ा	:	निर्धन पदयात्री

भृगुवंश नाटक

भृगुवंश नाटक

प्रस्तावना

[मञ्च पर एक शीतल-आलोक फैला है।]

[नट का प्रवेश]

नट : वन्दना। वन्दना उस परम-पुरुष की जिसका मुख ब्राह्मण, बाहु क्षत्रिय, ऊरु वैश्य तथा चरण शूद्र बन गये और इस प्रकार निर्गुण-पुरुष सगुण समाज-पुरुष में परिणत हो गया।

नटी : और वन्दना उस परम-पुरुष की जिसके हृदय से महर्षि भृगु का जन्म हुआ—ब्रह्मणो हृदयं भित्त्वा निस्सृतो भगवान् भृगु:।

नट : आर्ये! ठहरो! प्रबुद्ध दर्शकों के सम्मुख जातिवाद की चर्चा उचित न होगी।

नटी : आर्यपुत्र! जातिवाद हेय है किन्तु अपने पूर्व-पुरुषों की पुण्य-कीर्ति का कीर्तन जातिवाद नहीं, अपनी पहिचान की खोज है।

नट : आर्ये! ठीक कहती हो। जाति-कुल का आधार ऊंच-नीच का भाव रखना विषमता तथा फूट को जन्म देता है किन्तु अपनी जाति-कुल की कीर्ति का स्मरण वह मनोबल प्रदान करता है जो किसी भी राष्ट्र के आगे बढ़ने के लिये आवश्यक है।

नटी : विषमता तथा फूट का आधार तो वहीं समाप्त हो गया जहाँ जिस अग्नि की भृ (ज्वाला) से भृगु उत्पन्न हुए उसी यज्ञाग्नि के अंगारों से अंगिरस् तथा मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु जैसे ब्रह्मा के मानस-पुत्र भी उत्पन्न हुए। इन सब ऋषियों के सन्तान पूरी मानव जाति एक ही परिवार के सदस्य हैं।

नट : फिर भृगु पर ही तुम्हारा विशेष अनुराग क्यों है?

नटी : भृगु पर अनुराग मेरा नहीं, भगवान् कृष्ण का है जिन्होंने गीता में स्वयं को "ऋषियों में भृगु" कहा है।

नट : इसका कारण बता सकती हो?

नटी : कारण? कारण जानने के लिये इतिहास में जाना होगा। भृगुवंश की परम्परा को समझना होगा।

नट : क्या भृगुवंश नाटक को आज ही प्रस्तुत करने का संकेत कर रही हो?

नटी : आज नहीं तो फिर कब? कुशीलवों को अनुमति दें। उनकी कला आत्म-गौरव की पुनः स्थापना का निमित्त बने।

नट : तथास्तु।

[प्रस्तावना समाप्त]

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य

[प्राग्वैदिक काल के घर का एक कमरा। कमरे की छत फूस की बनी है। सिरकी डाल कर काम चलाया जा सकता है। फर्नीचर के नाम पर मुड्ढा, पीढ़ा तथा चटाई रखनी होगी। कमरे में सादगी, सुरुचि किन्तु सम्पन्नता झलकनी चाहिये। भृगु मुड्ढे पर, पुलोमा पीढ़े पर तथा च्यवन और शुक्र चटाई पर बैठेंगे। यद्यपि ये उपकरण उस समय नहीं थे जिस समय का यह दृश्य है किन्तु गुफा में पत्थरों पर अर्धनग्न अवस्था में भृगु जैसे पात्र को दिखाना ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से असुन्दर होगा। अग्नि के आविष्कारक के रूप में भृगु आदिम अवस्था के सूचक हैं परन्तु वेद की ऋचाओं के द्रष्टा तथा रथ के निर्माता के रूप में वे विकसित समाज के अङ्ग हैं। अत : यही उचित होगा कि हम भृगु को एक विकसित समाज का व्यक्ति चित्रित करें। समन्वय इस प्रकार हो सकता है कि वे चिरजीवी हैं तथा उन्होंने अपने यौवन में अग्नि के जलाने की विद्या खोजी किन्तु प्रौढावस्था तक आते-आते रथ बनाने जैसी विकसित विद्याओं का विकास कर लिया। यह काल प्रागैतिहासिक है। उसमें वर्षों की संख्या का अन्तर भी हो तो नाटक की प्रामाणिकता पर आँच नहीं आयेगी।]

[उपरिनिर्दिष्ट स्थिति में भृगु, उनकी पत्नी पुलोमा तथा पुत्र च्यवन एवं शुक्र बैठे हैं।]

भृगु : वत्स च्यवन ! देखो तुम्हारे पुत्र और्व ने अरणि से मन्थन द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की क्रिया में सफलता प्राप्त की या नहीं। प्रात: ब्राह्ममुहूर्त से ही अरणि-मन्थन में लग गया था। उसका हठ है कि आज के अग्निहोत्र के लिये अरणियों से वही अग्नि उत्पन्न करेगा।

[च्यवन उठना चाहते हैं, इसी बीच उनका पुत्र और्व एक प्रज्वलित समिधा लेकर मञ्च पर प्रवेश करता है।]

और्व : (भृगु से) पितामह ! मैंने अरणियों से अग्नि उत्पन्न कर समिधा प्रज्वलित कर ली। अब आप सभी अग्निहोत्रशाला में चलकर अग्निहोत्र सम्पन्न करें।

भृगु : वत्स ! अरणियों से अग्नि उत्पन्न करना साधारण काम नहीं। कोई भी विशिष्ट काम करने पर बड़ों को प्रणाम करना चाहिये। प्रथम दादी का चरण-स्पर्श करो। समिधा एक ओर पाषाण-खण्ड पर रख दो।

और्व : सर्वप्रथम पुरत: निहित इस अग्नि की स्तुति करता हूँ। यह यज्ञ के देव हैं, ऋत्विज् हैं, होता हैं तथा समस्त सम्पत्तियों के प्रदान करने वाले हैं।

भृगु : सो विश्वामित्र कृत यह प्रार्थना भी तुमने कण्ठस्थ कर ली। सुन्दर ! अब सबको प्रणाम कर तुम अग्निहोत्रशाला में चल प्रात:कालीन अग्निहोत्र की तैयारी करो। हम आते हैं; और देखो, अग्नि का एक भाग अपने भाई त्वष्टा को भी देना। वे अश्विनीकुमारों का रथ तैयार कर रहे हैं। चक्र की नेमि तैयार करने के लिये प्रात: से ही अग्नि की खोज में थे।

[और्व सबको प्रणाम करके जाता है।]

[इसी बीच त्वष्टा का प्रवेश । वह हाथ में रथ का एक चक्र लिये हैं ।]

त्वष्टा : पितामह ! रथ-चक्र तैयार है । कोई न्यूनता तो नहीं रही । आप जरा देख लें ।

भृगु : (चक्र को घुमा फिरा कर देखते हैं) तात ! ऐसा सुन्दर चक्र तो मैंने भी कभी नहीं बनाया था । निश्चय ही यह चक्र देवताओं के रथ के योग्य है । लेकिन प्रातः तुम अग्नि की खोज कर रहे थे । इस नेमि को बनाने के लिये अग्नि कहाँ से प्राप्त की ?

त्वष्टा : पितामह ! अग्नि में तो भृगुओं का जन्म ही हुआ है । शैशव से अरणि-मन्थन देखते-देखते क्या वह प्रक्रिया भी अब तक हम न सीखेंगे ? फिर हम अग्नि की उपासना करने वाले हैं । अग्नि हम पर पिता की भाँति प्रसन्न रहते हैं ।

[चपलतापूर्वक रथचक्र को घुमाते हुए ले जाता है ।]

भृगु : शुक्र ! तुम्हारा यह पुत्र त्वष्टा एक होनहार शिल्पी है । देवासुर-संग्राम के कारण रथों की माँग बढ़ गयी है । इसे रथ-निर्माण में ही लगाओ । यशस्वी होगा ।

शुक्र : तात ! यह देवासुर संग्राम मेरे लिये एक धर्मसङ्कट है । हमारे पूरे परिवार की सहानुभूति देवों के साथ है किन्तु मैं मानता हूँ कि असुरों के साथ अन्याय हुआ है । देवताओं ने असुरों के साथ सदा छल से काम लिया है ।

भृगु : पुत्र ! यदि तुम्हारा मन असुरों को धर्म पर मानता है तो तुम असुरों का साथ देने में स्वतन्त्र हो । धर्म-अधर्म का भेद अत्यन्त सूक्ष्म है ।

च्यवन : और धर्म-अधर्म का अन्तिम निर्णय अन्तरात्मा की आवाज़ ही करती है ।

शुक्र : किन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी अन्तरात्मा के अनुसार धर्माधर्म का निर्णय करने लगे तो समाज ही विशृङ्खलित हो जायेगा ।

च्यवन : ऐसा नहीं है । भृगु-संहिता में धर्म के चार लक्षण बताये हैं : श्रुति, स्मृति, सदाचार तथा अन्तरात्मा की आवाज़ ।

शुक्र : यह वाक्य तो मनुस्मृति का है ।

च्यवन : जिसे तुम मनुस्मृति कहते हो उसका ही प्राचीन नाम भृगु-संहिता है ।

शुक्र : अच्छा ! तो फिर उसे मनुस्मृति क्यों कहा गया ?

भृगु : वत्स ! यह एक पुरानी कहानी है । भृगुवंशी सदा सुधारवादी रहे । उधर अत्रि जैसे कुछ परम्परावादी ऋषि थे । हमारा उनसे मतभेद था । उन्होंने क्षत्रियों को भड़काया कि भृगु को भृगु-संहिता के निर्माण का श्रेय नहीं जाना चाहिये और तुम लोग अपने पूर्वज मनु के नाम पर इसका नाम मनुस्मृति कर दो । इस विवाद के कारण ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में कुछ मनमुटाव भी हो गया । वस्तुतः यह साहित्यिक चोरी है । मनुस्मृति का निर्माण मैंने किया किन्तु उसका श्रेय मनु को मिल गया । प्रमाण स्वयं मनुस्मृति में ही उपस्थित है :

स तानुवाच धर्मात्मा महर्षीन् मानवो भृगुः ।

पुलोमा : महर्षे ! सवेरे-सवेरे ही ये गड़े मुर्दे उखाड़ने बैठ गये—सो क्या ठीक है ? धर्म, धर्म है उसके वक्ता मनु हों या भृगु, क्या अन्तर पड़ता है ?

भृगु : दैत्यपुत्रि ! आज तो तुमने आर्य ऋषियों की-सी बात की है।

पुलोमा : आर्यपुत्र ! आर्यों का यह अभिमान व्यर्थ है कि उन्हीं में धर्मज्ञ होते हैं। क्या बलि या प्रह्लाद दैत्य नहीं थे ? क्या वे धर्म में किसी सुर, असुर अथवा मानव से कम थे।

भृगु : (सस्मित) मुझे कलह से रोकते-रोकते स्वयं कलह में पड़ रही हो। (च्यवन तथा शुक्र से) पुत्रो ! एक ध्यान रखना। अपनी माता पुलोमा को जो चाहो कहना, पर इसके मातृकुल के सम्बन्ध में कुछ कहोगे तो फिर इसके क्रोध से बचना कठिन है।

पुलोमा : आप सभी एक बात का विचार रखें। सुर, असुर, दैत्य, मानव, राक्षस—कोई भी हों, सभी में अच्छे लोग भी हैं, बुरे भी। किसी को उसकी जाति के आधार पर अच्छा या बुरा मानना अनुचित है।

भृगु : प्रिये ! तुम्हारे ये शब्द इस युग में जब दैत्य, असुर, देव, मानव, आर्य तथा आर्येतरों में नित्य युद्ध हो रहे हैं, स्वर्ण-अक्षर में लिखे जाने योग्य हैं।

शुक्र : सो मेरा सङ्कट दूर हुआ। उचित समझूँ तो मैं असुरों का पौरोहित्य स्वीकार कर सकता हूँ।

भृगु : ठीक है। लेकिन भृगुवंशियों से तुम्हारे सम्बन्ध मधुर रहने चाहिये। राजनीति अपनी जगह है, पारिवारिक सम्बन्ध अपनी जगह।

शुक्र : यह ठीक है तात ! अब मेरी एक नूतन काव्य-रचना सुन लें। आज मेरे मन की एक दुविधा मिट गयी। मन हो रहा है कि कुछ गुनगुनाऊँ।

भृगु : सुनाओ। अपनी काव्य-रचना के कारण तुम्हारा तो लोगों ने कवि उपनाम ही रख दिया है। पर कविता ऐसी मत सुनाना जो किसी की समझ में ही न आये।

शुक्र : जो कविता किसी की समझ में आ जाये वह कविता ही क्या हुई ? पर आप सुनें। कविता सुनकर आनन्द लेने की चीज है, समझकर व्याख्या करने की चीज नहीं। कविता इतिहास नहीं है।

[कविता-पाठ करता है।]

जाति एक सरिता है
जैसे वधूसरा
बहती है ढोसी में
किसी अपहृत नारी की
अश्रुजलधारा सी।
जाति है जल-प्रवाह
पुरुष है एक तरङ्ग
जिसकी गृह-लक्ष्मी
लीलने आता है
उसे मान अपनी
दैत्य जब मार्ग-भ्रष्ट
तब ही तेज च्यवित हो
धरासत करता है
दैत्य की देह को।

वही तेज पुत्र है
पुरुष के पौरुष का ।

च्यवन : *और वीर्य अम्बर में*
दीप्त ग्रह बन कर तब
युगों तक चमकता है
शुक्र-सा विमल रूप ।

पुलोमा : ठीक है । शुक्र तो कवि था ही च्यवन भी कवि हो गया ।

च्यवन : कवि की वाणी सुनकर अकवि भी गुनगुनाने लगते हैं ।

भृगु : मैं कविता का अभिनन्दन करता हूँ । किन्तु कविता कल्पनालोक की अप्सरा नहीं, कुठार की सङ्गिनी होनी चाहिये ।

पुलोमा : लेखिनी और तलवार पर आपका समान अधिकार देखकर मैं दैत्यकुल छोड़कर ऋषिकुल में आयी थी ।

[और्व सहसा वेग-पूर्वक प्रविष्ट होता है ।]

और्व : (तेज स्वर में) हम अग्निहोत्रशाला में आपकी प्रतीक्षा में हैं और आप यहां बैठे हैं । यह विचार आपने नहीं किया कि अग्नि शान्त हो गयी तो ?

पुलोमा : ठीक कह रहे हो । लेकिन अपनों से बड़ों के बीच उग्र-व्यवहार समीचीन नहीं है ।

भृगु : अग्नि के उपासक भी अग्नि ही हो जाते हैं । उनमें शान्ति कहाँ ? आओ चलें । अग्निहोत्र करलें ।

[सब जाते हैं ।]

— पटाक्षेप —

द्वितीय दृश्य

[जंगल में झाड़ियों के बीच एक ठूंठ वृक्ष खड़ा है । त्वष्टा परशु लिये उस ठूँठ के निकट खड़ा कुछ सोच रहा है । वह बारम्बार ठूँठ को टटोलता है ।]

त्वष्टा : इस वृक्ष में यदि जीवन हो तो उसे चोट न पहुँचे—औषधे ! मैनं हिंसीः । (ठूँठ पर परशु की चोट करता रहता है ।)

[एक युवती देवकन्या प्रवेश करती है ।]

देवकन्या : हे युवक ! तुम कौन हो ?

त्वष्टा : आप किस अधिकार से मेरा परिचय पूछ रही हैं ?

देवकन्या : वन के वृक्षों को इस प्रकार नष्ट करने वाले व्यक्ति को रोकने का अधिकार हर उस व्यक्ति को है जो प्रकृति से प्रेम करता हो ।

त्वष्टा : सो आप प्रकृति-प्रेमी हैं । तो इतना अवश्य जानती होंगी कि यह ठूँठ सूख कर स्वयं ही निर्जीव हो चुका है, इसके काटने से प्रकृति नष्ट नहीं होती ।

देवकन्या : ठूँठ भी दुबारा फूट सकता है।

त्वष्टा : इतनी पहचान त्वष्टा को है कि कौन ठूँठ फूट सकता है तथा कौन सर्वथा निर्जीव हो गया है ?

देवकन्या : फिर भी ठूँठ के काटने का प्रयोजन ?

त्वष्टा : प्रयोजन गोपनीय है।

देवकन्या : गोपनीय ? क्या कोई अभिचार कर्म करोंगे ?

त्वष्टा : भृगुवंशी अभिचार में नहीं कर्म में विश्वास रखते हैं।

देवकन्या : और उन कर्मों की गोपनीयता उन्हें अभिचार से भी अधिक कुत्सित बना देती है।

त्वष्टा : वाणी पर संयम करें। स्त्री हो, अन्यथा इस प्रकार निर्गल प्रलाप करने पर—

देवकन्या : स्त्री-पुरुष का भेद मानव संस्कृति में है। हम देवों की संस्कृति में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। जो तुम पुरुष का करते, सो मेरा भी कर सकते हो।

[त्वष्टा देवकन्या पर परशु का प्रहार करना चाहता है। देवकन्या परशु पकड़ लेती है। त्वष्टा संघर्ष करके भी परशु छुड़ा नहीं पाता। कठिनाई से परशु छुड़ाता है।]

त्वष्टा : तुम पर प्रहार न करूँगा। तुम देवकन्या ही नहीं, वीरकन्या भी हो।

देवकन्या : मुझ पर प्रहार न करोगे तो ठूँठ पर भी प्रहार न कर पाओगे।

त्वष्टा : प्रयोजन जानोगी तो प्रहार करने से न रोकोगी।

देवकन्या : प्रयोजन तो गोपनीय है न ?

त्वष्टा : देवकन्याओं से नहीं। इस ठूँठ के काष्ठ से इन्द्र के वज्र का हत्था बनाना है।

देवकन्या : देवराज इन्द्र के वज्र का हत्था ?

त्वष्टा : जी।

देवकन्या : देवताओं से आपका सम्पर्क है ?

त्वष्टा : मैं देवों के रथ बनाता हूँ।

देवकन्या : देवरथ बनाना आप जानते हैं ? देवरथ आप ऐसा कैसे बनाते हैं कि वह पृथ्वी को स्पर्श करे बिना ही चलता है ?

त्वष्टा : सब रहस्य सबको नहीं बतलाये जाते।

देवकन्या : आप मुझे सबमें गिनते हैं।

त्वष्टा : क्या आप सबसे बाहर हैं ?

देवकन्या : यदि आप मानें तो ?

त्वष्टा : यह क्या पहेली है ?

देवकन्या : सब रहस्य सबको नहीं बतलाये जाते।

त्वष्टा : सब रहस्य किसी एक को तो बताये जाते हैं।

देवकन्या : वह 'कोई एक' एक ही होता है।

त्वष्टा : मैं मानता हूँ कि आप मर्यादा का अतिक्रमण कर रही हैं। सीधी बात को घुमा फिरा कर ऐसा अर्थ दे रही हैं कि.....

देवकन्या : मर्यादायें मानवों की अलग हैं, देवों की अलग। हाँ, यदि आप मानवों की मर्यादा ही मानते हैं तो एकान्त में किसी युवती से बात करना भी अनुचित था।

त्वष्टा : बात आपने की, मैंने नहीं। फिर बात की तो यह आवश्यक नहीं कि संयम भी छोड़ा जाये।

देवकन्या : मैंने कोई मर्यादा नहीं तोड़ी। आप मुझे अपने योग्य न मानें तो बात दूसरी है। आप मर्यादा की दुहाई देकर मेरी प्रार्थना को ठुकरा सकते हैं।

त्वष्टा : मेरा यह आशय नहीं है।

देवकन्या : तो इसे स्वीकार करें। (अपने गले का हार त्वष्टा के गले में डालना चाहती है।)

त्वष्टा : देवों में गन्धर्व विवाह होते हैं। मैं ब्राह्मण हूँ। ब्राह्मविवाह के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से मेरा विवाह सम्भव नहीं।

देवकन्या : ब्राह्मविवाह बहुत जटिल है। मुहूर्त न मिले तो महीनों प्रतीक्षा करो।

त्वष्टा : प्रतीक्षा प्रीति को मधुर बना देती है।

देवकन्या : इतने सुन्दर रूप को देखने के बाद प्रतीक्षा असह्य है।

त्वष्टा : किसका रूप ?

देवकन्या : कितने भोले हो ?

त्वष्टा : मैं भोला नहीं। तुम चालाक हो।

देवकन्या : पुरुष नहीं समझ सकता। एक ऐसा भी अवसर स्त्री के जीवन में आता है जब वह चालाकी छोड़कर मूर्ख बनना पसन्द करती है। (भावुक हो जाती है।)

त्वष्टा : तुम देवकन्या हो, भावुक हो सकती हो। मैं शिल्पी हूँ, कर्म ही मेरा अधिकार क्षेत्र है। भावुक बनूँ तो दिन भर में एक रथ का पहिया भी न बना पाऊँ।

देवकन्या : शिल्पी क्या भावना के बिना रचना कर सकता है। भावना ही तो शिल्प में साकार होती है।

त्वष्टा : वह भावना दूसरी है जो शिल्प को जन्म देती है।

देवकन्या : समस्त जीवन को एक ही भावना प्रेरणा देती है, भावना की अभिव्यक्ति भिन्न हो सकती है, भावना नहीं।

त्वष्टा : देवकन्या ने भावनाओं का गहन अध्ययन किया है।

देवकन्या : भावना अध्ययन की नहीं, अनुभव की वस्तु है।

त्वष्टा : तब भावना का अनुभव ही करवाओ। कोई गीत सुनाओगी ?

देवकन्या : मेरी परीक्षा कर रहे हैं क्या ?

त्वष्टा : परीक्षा हो चुकी, अब परीक्षित का उपभोग करना चाहता हूँ।

देवकन्या : सुनें।

वीणा के जड़ तारों पर मत डालो भार सभी गीतों का
चेतन भी स्पन्दित होने दो तब जाकर कुछ गीत बनेंगे।

जब से वायु बही पुरवायी
सजल सजल यह गगन हुआ है।
विद्युत् सी कौंधा करती है
मत्त-मोर मन मगन हुआ है।

केवल धरा डूब जाने से वर्षा का अनुमान न होगा
इन्द्र-धनुष भी तो उगने दो तभी धरा-नभ मीत बनेंगे।

नमित नयन उन्नमित हो गये
स्फुरित अधर हैं कुछ कहने को।
तन आप्यायित मन आप्यायित
क्यों श्रम करते हो, रहने दो।

शब्द कण्ठ से बाहर आकर खो जायेगा कर्ण कुहर में
अन्तर में डूबा रहने दो प्राण कदाचित् शीत बनेंगे।

और अब आपके श्रीमुख से कुछ सुनने की इच्छा करूँ तो अनुचित न होगा। शिल्पी कलाकार के श्रम का मूल्य अवश्य जानते होंगे।

त्वष्टा : कलाकार के श्रम का मूल्य कला ही है। सुनो।

मैं क्या जानूँ नील गगन का है कितना विस्तार रे
मेरा तो तुम तक सीमित है छोटा सा संसार रे।

मन पर क्वाँरेपन का पहरा
आँखों पर पलकों का पहरा
अधरों को कर से ढक लेती
मस्तक पर अलकों का पहरा

मैं क्या जानूं सागर की गहराई को कितना गहरा है
इन नयनों के करुणाजल में डूबा कितनी बार रे

मस्तक का कुंकुम गीला है
हाथों की मेंहदी अलसाई
गूँज रही है अब कानों में
मधुर मिलन की मृदु शहनाई

मैं क्या जानूं कमलों की कोमलता को कितनी कोमल है
इन हाथों की कोमलता में खोया कितनी बार रे

पुण्यों के विनिमय में पाया
मैंने ऐसा आत्मसमर्पण
बनकर आया जो आँखों में
अश्रुस्मित का अद्भुत मिश्रण

मैं क्या जानूं पुण्यों के विनिमय में क्या क्या मिल सकता है
मैं तो इतने से ही सुख पर रोया कितनी बार रे।

देवकन्या : (त्वष्टा की ओर आलिङ्गन करने बढ़ती है।) सच !

[इसी बीच दो अप्सरायें प्रविष्ट होती हैं। देवकन्या आलिङ्गन करती करती रुक जाती है।]

प्रथम अप्सरा : देवकन्ये ! कितना विलम्ब हुआ तुम्हें खोज रही हैं ?
(त्वष्टा की ओर देखकर) और आप कौन हैं ?

देवकन्या : सब जान जाओगी। (त्वष्टा से) ये मेरी अभिन्न सखी अप्सरायें हैं।

प्रथम अप्सरा : पूछा हमने है कि यह पुरुष कौन है और उत्तर पुरुष को दे रही हो कि हम तुम्हारी अभिन्न सखी हैं।

देवकन्या : त्वरा न करो। शनैः शनैः बतलाती हूँ।

द्वितीय अप्सरा : बतलाने पर समझे वह मनुष्य। बतलाने पर भी न समझे वह पशु। बिना बतलाये समझे वह अप्सरा। ठीक है न ?

देवकन्या : (कान में) बिना बतलाये समझे वह अप्सरा नहीं, सहेली, जो बूझ लेती है सभी पहेली।

त्वष्टा : (देवकन्या से) अब अनुमति दें। विलम्ब हो गया। काष्ठ लेकर चलूंगा।

द्वितीय अप्सरा : बिना आतिथ्य ग्रहण किये आप जायेंगे तो हम पाप की भागिनी न होंगी।

त्वष्टा : यह वन है, कोई आपका घर तो है नहीं।

द्वितीय अप्सरा : देवकन्ये ! मनुष्य वन को घर नहीं मानते। हम देवों के तो वन ही घर हैं। तुम अतिथि से आतिथ्य ग्रहण का आग्रह न करोगी ?

देवकन्या : सखि ! तुम्हारा आग्रह सो मेरा आग्रह।

प्रथम अप्सरा : (त्वष्टा से) देवकन्या को सङ्कोच है, किन्तु मैं स्पष्ट कहती हूँ कि आपको हमारा आतिथ्य ग्रहण करना ही होगा।

देवकन्या : आप विचार न करें। आतिथ्य ग्रहण के अनन्तर मेरी सहेली आपको रथ से अपने निवास पर छोड़ जायेंगी। समय बच जायेगा।

त्वष्टा : स्वीकार है। किन्तु मेरे घर छोड़ने आपकी सहेली ही नहीं स्वयं आपको भी चलना होगा।

द्वितीय अप्सरा : स्वीकार है।

देवकन्या : सखि ! सोच कर कहो। क्या यह उचित होगा ?

द्वितीय अप्सरा : होगा। पहले तुम्हारे पिता से निवेदन करेंगे। उनकी अनुमतिपूर्वक त्वष्टा के वहां जाना अनुचित न होगा। चलो।

[सब जाते हैं। त्वष्टा परशु से एक काष्ठ खण्ड तोड़कर अपने साथ ले लेता है।]

— पटाक्षेप —

तृतीय दृश्य

[भृगु का निवास, भृगु तथा पुलोमा बैठे हैं। सन्ध्या का समय]

भृगु : पुलोमे ! आज त्वष्टा को आने में बहुत विलम्ब हुआ।

पुलोमा : आप ऋषिगण सूर्यास्त के साथ घरों में आ जाते हैं किन्तु हमारे दैत्यकुलों में तो सूर्यास्त होने पर लोग घर से बाहर निकलते हैं।

भृगु : अर्थात् चिन्ता की बात नहीं है। यही न ?

पुलोमा : ऋषि को तो चिन्ता करना वैसे भी शोभा नहीं देता।

भृगु : क्यों ? क्या ऋषि मनुष्य नहीं होता ?

पुलोमा : आपने अपने लिये मनुष्य की भांति तो कभी सोचा नहीं। काम, काम, काम। यन्त्र की भाँति या तो काम में लगे रहे या फिर मन्त्र-रचना। कभी मनोरञ्जन को भी कोई अवसर आपने जीवन में दिया क्या ?

भृगु : मनोरञ्जन बीमार मन की आवश्यकता है। मैंने जीवन में कभी वह ऊब पैदा ही नहीं होने दी जिसे दूर करने के लिये मनोरञ्जन चाहिए।

पुलोमा : आप मनोरञ्जन को बीमार मन की आवश्यकता मानते होंगे। मैं तो मनोरञ्जन को जीवन के लिए अनिवार्य सञ्जीवनी मानती हूँ।

[इतने में त्वष्टा, देवकन्या तथा दो अप्सरायें प्रवेश करती हैं।]

भृगु : (त्वष्टा को देखकर) लो तुम्हारे मनोरञ्जन का साधन आ गया। (फिर देवकन्या तथा दो अप्सराओं को देखकर) मनोरञ्जन का साधन नहीं, मनोरञ्जन की पूरी सेना ही आ गयी है।

त्वष्टा : पितामह ! ये देवकन्या तथा इनकी दो सखियां आई हैं।

[तीनों प्रणाम करती हैं।]

भृगु : सुखी रहो (त्वष्टा से) वत्स ! तुम तो काष्ठ लेने गए थे किन्तु सञ्चरणशील पुष्पलता ही ले आये।

पुलोमा : कैसी बात कर रहे हैं ?

भृगु : ठीक कह रहा हूँ। देव-संस्कृति में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग वर्जित नहीं है।

देवकन्या : तात ! देव-संस्कृति की प्रत्येक बात ग्राह्य हो—यह आवश्यक तो नहीं।

भृगु : आवश्यक नहीं, किन्तु देवों के साथ उनकी संस्कृति के अनुकूल व्यवहार करना ही ठीक रहता है। फिर भी मेरे कथन से तुम्हें बुरा लगा हो तो·····

देवकन्या : आपका प्रत्येक कथन हमारे लिए आशीर्वाद है, बुरा कैसे लगेगा ?

पुलोमा : पुत्रि ! तुम बैठो। मैं अभी कह रही थी कि आज मन कह रहा है कि कोई उत्सव आयोजित हो तो कुछ मनोरञ्जन हो। इसी बीच तुम आ गयी तो कुछ मन बहलेगा। त्वष्टा के आने में विलम्ब होने से उसके पितामह का मन चिन्ताकुल हो चला था।

भृगु : चिन्ताकुल होना क्या होता है—यह मैंने नहीं जाना। यदि संसार में कोई चिन्ता की बात है तो यह कि मनुष्य चिन्तित हो। विश्व में सब कुछ इतना सुनियोजित है कि उसमें चिन्ता का अवकाश ही नहीं है।

पुलोमा : अर्थात् सब कुछ पूर्वनिर्धारित है।

देवकन्या : पूर्वनिर्धारित हो या न हो किन्तु कर्मठता के बिना कुछ भी सम्पन्न नहीं होता—यह तो प्रत्यक्ष ही है। जो श्रम नहीं करता उससे देवगण कभी मैत्री नहीं करते—न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः।

भृगु : पुत्रि ! हमारा तो प्रेरणा गीत ही है—सदा गतिशील रहो। जो सो रहा है सो कलियुग, जो अंगड़ाई लेता है सो द्वापर, जो उत्थान करता है सो त्रेता तथा जो चरणशील है वह सतयुग है—

कलिः शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्॥
चरैवेति चरैवेति.....

देवकन्या : आश्चर्य है कि ऋषि-संस्कृति तथा देव-संस्कृति में इतनी समानता है।

भृगु : ऋषि और देव भिन्न नहीं हैं। मेरी गणना ऋषि ऋषियों में तथा देव देवों में सदा से करते रहे हैं किन्तु स्वयं मैंने सदा मानव को ही सर्वोच्च स्थान दिया है।

देवकन्या : तात ! इसका क्या कारण है ?

भृगु : कारण है कर्मठता। देवयोनि भोगयोनि है। कर्मयोनि तो मनुष्य योनि ही है।

देवकन्या : किन्तु मनुष्य तो सदा देवत्व की कामना करता रहा है।

भृगु : केवल वही मनुष्य देवत्व की कामना करते रहे हैं जिन्हें मनुष्यत्व की गुरुता का आभास नहीं है।

देवकन्या : मनुष्यत्व की गुरुता क्या है ?

भृगु : मनुष्यत्व की गुरुता संवेदनशीलता में निहित है। संवेदनशीलता मनुष्य जीवन की बंधी बंधायी लीक नहीं है, वह स्वतः स्फूर्त्त नृत्य है। मनुष्य के जीवन में पाषाणी दृढ़ता भले न हो किन्तु उसमें सौंधी मिट्टी की सुगन्ध है।

देवकन्या : ऋषिप्रवर ! क्या मुझे मानवी होने का वर प्राप्त होगा ?

भृगु : मानव होने का अधिकार उन सबको है जो प्रेम करना जानते हों।

त्वष्टा : (सशङ्क भाव से) पितामह ! अब देवकन्या को जाने की अनुमति दें। वन में मिलीं तो यहाँ तक चली आयीं।

भृगु : सात डग साथ चलने से मैत्री हो जाती है। देवकन्या तुम्हारी मित्र है और मानवी बनना चाहती है। फिर तुम इन्हें देवकुल में वापस क्यों भेजना चाहते हो।

अप्सरा : देवकन्ये ! बधाई। ऋषि बिना कहे ही मन का भाव जान लेते हैं।

पुलोमा : मैं कुछ समझी नहीं। यह सब क्या है ?

भृगु : इतिहास की पुनरावृत्ति। आज तुम्हारे और मेरे बीच का इतिहास त्वष्टा और देवकन्या के बीच दोहराया जा रहा है। जाओ शुक्र और च्यवन को बुला लाओ।

[पुलोमा जाती है, शुक्र तथा च्यवन सहित वापस आती है।]

भृगु : शुक्र ! एक शुभ समाचार है।

शुक्र : माँ पुलोमा ने बताया है।

भृगु : फिर अवसरोचित तैयारियां करो।

च्यवन : तात ! मुझे अब तपस्या की अनुमति मिले। त्वष्टा के विवाह के साथ मेरा वानप्रस्थ लेना उचित होगा।

भृगु : दोनों मार्ग विहित हैं; प्रवृत्ति भी निवृत्ति भी। तुम्हारी रुचि सदा से निवृत्ति की ओर रही सो मैं रोकूँगा नहीं। अब सब विश्राम करें। कल प्रातः त्वष्टा के विवाह तथा तुम्हारे वानप्रस्थ की तैयारी साथ-साथ ही होगी।

[सबका प्रस्थान]

[प्रथम अङ्क समाप्त]

द्वितीय अङ्क

प्रथम दृश्य

[भृगु-पुत्र च्यवन तपस्या में लीन मिट्टी का एक पिण्ड मात्र दिखायी दे रहा है। केवल उनकी दो आँखें दिखायी दे रही हैं।]

[राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या का प्रवेश]

सुकन्या : (च्यवन के निकट कुतूहलवश)—यह क्या है ? मिट्टी ने मानो एक मानव का आकार ग्रहण कर लिया है। और इस मानवाकार मृत्पिण्ड में चमकदार यह दो बिन्दु क्या हैं ? अवश्य अमूल्य मणियाँ होंगी। इन्हें इस काँटे से निकाल लेती हूँ। (काँटे को आँखों में गड़ाते ही लाल रक्त की धार बह निकलती है।)

[सुकन्या घबराकर अपने पिता शर्याति के पास जाती है।]

शर्याति : क्या हुआ पुत्रि ! घबरा क्यों रही हो ?

सुकन्या : घबराहट की बात ही है। मैंने अनजाने में ही एक ऋषि के नेत्र नष्ट कर दिये हैं।

शर्याति : पुत्रि ! यह तुम्हारी अविवेकशीलता की पराकाष्ठा है। हो न हो, तुमने महर्षि च्यवन का ही अनिष्ट किया है। वे महर्षि यहीं लम्बी तपस्या में रत हैं। मेरे साथ शीघ्र चलो।

[दोनों चलकर मृत्पिण्ड के निकट आते हैं।]

[च्यवन मृत्पिण्ड को झाड़कर खड़े हो जाते हैं। उनकी आँखें चली गई हैं।]

शर्याति : पुरुवंशी राजा शर्याति महर्षि च्यवन के चरणों में प्रणाम निवेदन करता है।

च्यवन : (नेत्रों की पीड़ा को कथञ्चित् सँभाल कर) आयुष्मान् भव। राजन् ! इस समय मैं अस्वस्थ हूँ। दीर्घकालिक तपस्या करते समय किसी ने मेरी आँखों पर प्रहार किया है।

शर्याति : महर्षे ! मैं जानता हूँ। इसीलिए उपस्थित हुआ हूँ।

च्यवन : आपको यह सूचना कैसे मिली ?

शर्याति : सूचना उसी ने दी है जिसने यह अपराध किया है।

च्यवन : तब उस अपराधी को साथ भी लाये हो।

शर्याति : जी। वह यहीं आपके सम्मुख उपस्थित है।

च्यवन : तुम राजा हो। अपराधी को यथोचित दण्ड दो। अच्छा हुआ ब्राह्मण को अपने धर्म के विरुद्ध जाकर दण्ड-विधान नहीं करना पड़ा।

शर्याति : दण्ड-विधान तो महर्षि आपको ही करना होगा।

च्यवन : क्यों ? अपराध तुम्हारे सम्मुख है। क्या तुम्हारी न्याय-बुद्धि दण्ड-विधान नहीं कर सकती है ?

शर्याति : अपराध साधारण नहीं।

च्यवन : तो दण्ड भी असाधारण ही हो।

शर्याति : दण्ड-विधान आप ही करें।

च्यवन : अपराधी मुझ नेत्रहीन की सेवा आजीवन करे। मैं ब्राह्मण तो यही कोमल से कोमल दण्ड दे सकता हूँ। नेत्र-ज्योतिहीन होने पर एक सेवक तो मेरे लिये अपरिहार्य हो ही गया है।

शर्याति : और यदि अपराधी स्त्री हो तो क्या आप उसे भी सेवा में रख सकेंगे।

च्यवन : विवाहिता स्त्री पति-सेवा में रहे—यही धर्म है। मैं अपना दण्ड-विधान वापस लेता हूँ।

शर्याति : अपराधिनी अविवाहिता है।

च्यवन : तब मेरा दण्ड-विधान अटल है।

शर्याति : क्या अविवाहिता कन्या का आपकी सेवा में रहना लोकापवाद का कारण न बनेगा।

च्यवन : बनेगा। उपाय यह है कि वह कन्या मेरी परिणीता होकर रहे।

शर्याति : आप परिणय करेंगे।

च्यवन : करना होगा। संकल्प था तपस्या का। विधि ने पराश्रित बना दिया—आँखें गयीं। अब परिणीता स्त्री के अतिरिक्त मेरा आजीवन निर्वाह कोई नहीं कर सकेगा।

शर्याति : अपराधिनी मेरी ही पुत्री है।

च्यवन : दण्ड-विधान अपराधी के व्यक्तित्व को देखकर नहीं, अपराध की गुरुता को देखकर किया जाता है।

शर्याति : मुझे स्वीकार है। मैं अपनी पुत्री सुकन्या को आपकी पत्नी के रूप में देता हूँ।

सुकन्या : पिताजी ! अपनी पुत्री की इच्छा जानना जरूरी नहीं समझते हैं।

शर्याति : समझता हूँ किन्तु यह विवाह नहीं अपराध का दण्ड है। यहाँ अपराधिनी की इच्छा अनिच्छा अप्रासङ्गिक है।

सुकन्या : अपराध का यह दण्ड कि किसी कन्या के जीवन की बलि चढ़ायी जाये, अनुचित है। किन्तु च्यवन ऋषि की सेवा का सौभाग्य मैं स्वेच्छा से वरण करती हूँ। च्यवन ऋषि केवल मेरी एक शर्त स्वीकार करें।

च्यवन : राजन् ! इस उद्दण्ड बाला ने एक उद्दण्डता की जिसका दण्ड भोगने की बात तो दूर, दूसरी उद्दण्डता कर रही है। विवाह के बन्धन में बँधते समय स्त्री-पुरुष के बीच जो शर्तें अनादिकाल से वैदिक-परम्परा में चली आयी हैं उनके अतिरिक्त किसी शर्त की चर्चा नितान्त असङ्गत है।

सुकन्या : शर्त सुने बिना शर्त की चर्चा को असङ्गत बतलाना ऋषि को शोभा नहीं देता।

च्यवन : अपनी शर्त भी सुना दो।

सुकन्या : आपको मेरे साथ देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों के पास चलना होगा। वे नेत्र-प्रत्यारोपण में निपुण हैं। आप पुनः स्वास्थ्य लाभ कर सकेंगे—ऐसा मेरा विश्वास है।

च्यवन : कोई अन्धे की पत्नी कहलाना पसन्द न करे—यह स्वाभाविक है। मुझे शर्त स्वीकार है।

सुकन्या : किन्तु अश्विनीकुमारों के चिकित्सा शुल्क कौन देगा ?

शर्याति : मेरा राज्य-वैभव किस दिन के लिये है ?

सुकन्या : देववैद्यों का शुल्क राज्य-वैभव नहीं है ।

च्यवन : तो देवी सम्पदा देकर उनका शुल्क चुका दिया जायेगा ।

सुकन्या : आर्यपुत्र ! (बीच में रुक कर) महर्षे !

च्यवन : आर्यपुत्र भी कह सकती हो । ऋषियों के विवाह आर्ष होते हैं । उनमें मानस-सङ्कल्प मात्र से संस्कार हो जाता है ।

सुकन्या : देववैद्य आपके नेत्र-प्रत्यारोपण की शल्य चिकित्सा किसी प्रलोभन से न करेंगे । मैं उन्हें जानती हूँ । यदि आप ब्राह्मण वर्ग में प्रचार कर उन्हें सोमपान का अधिकार दिला सकें तो मैं मानती हूँ अश्विनीकुमार सन्तुष्ट हो जायेंगे ।

च्यवन : उन्हें सोमपान के अधिकार से रोका किसने ?

सुकन्या : इन्द्र ने ।

च्यवन : कारण ?

सुकन्या : कारण गम्भीर है । इन्द्र देवराज हैं । अश्विनीकुमार वैद्य हैं । देवताओं का कहना है वैद्य देवताओं के समकक्ष नहीं हो सकता । वे मनुष्य-लोक में चिकित्सा करने के लिये घूमते फिरते हैं ।

च्यवन : वैद्य देवताओं के समकक्ष क्यों नहीं हैं । देवता भी जन-कल्याण करते हैं—प्रकाश, वायु, जल आदि देकर । वैद्य भी जन-कल्याण करते हैं—स्वास्थ्य प्रदान करके । सोमपान अश्विनीकुमारों का जन्मसिद्ध अधिकार है ।

सुकन्या : आर्यपुत्र ! सत्य है । इससे पूर्व कि आपकी नेत्रज्योति को स्थायी हानि हो हमें अविलम्ब अश्विनीकुमारों के पास चलना चाहिये ।
(चलती है, च्यवन का हाथ पकड़कर) (शर्याति भी साथ चलना चाहता है ।)

सुकन्या : पिताजी ! आप अब जायें । आर्य नारी अपने पति की सेवा में किसी अन्य के आश्रित नहीं होती ।

[शर्याति जाते हैं । सुकन्या प्रणाम करती है ।]

— पटाक्षेप —

द्वितीय दृश्य

[अश्विनीकुमारों का शल्य-चिकित्सा कक्ष]

[सुकन्या शल्य-चिकित्सा कक्ष पर थाप देती है ।]

अश्विनीकुमार : क्या है ? बिना पूर्व निर्धारित समय देववैद्यों से मिलना सम्भव नहीं है । तुम मनुष्यों को क्या यह ज्ञात नहीं है ?

सुकन्या : ज्ञात है । आपत्काल में निर्धारित समय के बिना आना पड़ा । क्षमाप्रार्थिनी हूँ ।

अश्विनीकुमार : क्षमा प्रार्थना से वैद्यों के नियम नहीं बदलते । आपत्कालीन समस्या बतावें ।

सुकन्या : कुछ समय पूर्व ही मेरे पति की आँखें अकस्मात् चली गयीं।

अश्विनीकुमार : कैसे ?

सुकन्या : मेरी मूर्खता से। मैंने इनमें कांटा घुसा दिया।

अश्विनीकुमार : (आँखें देखकर) नेत्रज्योति आने की सम्भावना नहीं है।

सुकन्या : है।

अश्विनीकुमार : (क्रोध से) है ? वैद्य आप हैं या मैं ?

सुकन्या : आप वैद्य नहीं; देवताओं के वैद्य हैं। इसीलिये मैंने कहा कि नेत्रज्योति आ सकती है।

अश्विनीकुमार : हम देवताओं के वैद्य हैं किन्तु आप देवता नहीं हैं। देवताओं के लिये हम प्रयत्न करते किन्तु मनुष्य के लिये हम इतना श्रम नहीं करेंगे।

च्यवन : देववैद्यों ! मनुष्य का अपमान न करें। देवताओं को मनुष्य ही हविष्यान्न प्रदान करता है।

अश्विनीकुमार : जी ! और सोमरस भी। तब मनुष्य भूल जाता है कि सोमरस देववैद्यों को भी देना है।

च्यवन : सोमरस पीने का अधिकार पाने के लिये .....

[बीच में सुकन्या रोक देती है।]

सुकन्या : आर्यपुत्र ! यह समय तर्क-वितर्क का नहीं।
(अश्विनीकुमार से) आपको सोमरस पान का अधिकार मिलेगा, मेरे पति की नेत्रज्योति आनी चाहिये।

अश्विनीकुमार : अधिकार मिलेगा ? समस्त स्वर्ग पर तुम्हारा ही तो राज्य है न ?

सुकन्या : मेरा राज्य स्वर्ग पर नहीं, परन्तु मेरे पति का राज्य देवगणों पर है। सोमरस का अधिकार आपको मिलेगा।

अश्विनीकुमार : (च्यवन की ओर अवहेलना पूर्वक देखते हुए) तुम्हारा पति ! अन्धा ! ऊँह !

सुकन्या : देववैद्य ! वैद्य होना एक बात है, शब्द का ठीक प्रयोग जानना दूसरी बात है। भृगु के पुत्र को अन्धा कहने से पहले दो बार सोच लेना चाहिये।

दूसरा अश्विनीकुमार : (बाहर आकर पहले अश्विनीकुमार से) क्या है ? (च्यवन को देखकर) ओह ? गहरी चोट है।

पहला अश्विनीकुमार : और चिकित्सा के लिये इसे हमारे पास लाये हैं। शुल्क में हमें सोमपान का अधिकार दिलाने की बात कर रहे हैं।

दूसरा अश्विनीकुमार : तुम रोगी से बहस कर रहे हो ? वैद्य का धर्म रोगी की चिकित्सा करना है या उससे बहस करना।

पहला अश्विनीकुमार : चिकित्सा साध्य रोगी की होती है।

दूसरा अश्विनीकुमार : कोई रोग असाध्य नहीं होता। वैद्य अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिये रोग की असाध्यता का सहारा लेते हैं।

सुकन्या : (दूसरे अश्विनीकुमार का चरणस्पर्श पूर्वक) वैद्यराज ! यह प्रश्न केवल एक व्यक्ति की नेत्रज्योति का ही नहीं मेरे जीवन की ज्योति का भी है जिसकी कोमल भावनायें अंकुरित होने से पहले ही कुचल दी गयीं।

दूसरा अश्विनीकुमार : रोग भावनाओं से ठीक नहीं होते। निदान तथा उपचार से ठीक होते हैं। आप रुकें। रोगी को हमारे साथ आने दें।

[च्यवन को अश्विनीकुमार शल्य-चिकित्सा-कक्ष में ले जाते हैं। सुकन्या बाहर बैठ जाती है।]

पहला अश्विनीकुमार : (बाहर आकर) यदि तत्काल मरे किसी प्राणी के नेत्र मिल सकें तो आपके पति के नेत्रों का प्रत्यारोपण द्वारा उपचार शायद हो सके।

सुकन्या : मेरे नेत्र उपस्थित हैं।

अश्विनीकुमार : मैंने तत्काल मरे प्राणी की बात की है। आप जीवित हैं। मनुष्य सदा भावना में बहते हैं। तर्क से काम नहीं लेते। इसीलिए हम देववैद्य मनुष्यों का उपचार अपने हाथ में नहीं लेते।

सुकन्या : देववैद्य हों या अन्य वैद्य—वे भावनाओं को नहीं समझते। इसीलिये यह नहीं जान सकते कि जिस स्त्री का पति विवाह से पूर्व नेत्र खो दे—वह स्त्री जीवित नहीं, मृत ही है। चलो, तर्क की बात ही कहती हूँ। यदि मृत के नेत्र मेरे पति के काम आ सकते हैं तो जीवित के नेत्र क्यों नहीं ?

अश्विनीकुमार : क्योंकि यह आयुर्वेद-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है।

सुकन्या : किसी शास्त्र के नियम मनुष्य से ऊपर नहीं हैं। शास्त्र मनुष्य के लिये बने हैं। मनुष्य शास्त्रों के लिए नहीं बने हैं। आप मेरे नेत्रों को निकालकर मेरे पति के लगा दें। मेरी सहर्ष अनुमति है।

अश्विनीकुमार : आपकी नहीं, शास्त्र की अनुमति चाहिये।

दूसरा अश्विनीकुमार : (बाहर आकर) प्रियं ते निवेदयामि। अश्विनीकुमार ! दिष्ट्या रोगी नेत्र-ज्योतिर्लभते।*

सुकन्या : वैद्यराज ! हम मानुषी भले देववाणी बोलें नहीं, पर समझती हैं। आपके ये वचन मेरे जीवन के लिये अमृत का काम कर रहे हैं।

अश्विनीकुमार : आप अन्दर आ सकती हैं।

[अन्दर शल्य-चिकित्सा-कक्ष में च्यवन काष्ठफलक पर लेटे हैं। चारों ओर शल्य-कर्म के उपकरण रखे हैं।]

सुकन्या : आर्यपुत्र ! बहुत वेदना है ?

च्यवन : देववैद्य और मानव-वैद्यों में यही अन्तर है। देववैद्य शल्य-क्रिया में वेदना अनुभव नहीं

*(हिन्दी अनुवाद)—तुम्हें एक खुशी की खबर दूँ। अश्विनीकुमार ! सौभाग्य से रोगी की आँखों में रोशनी आ गयी है।

होने देते। इस हेतु ये दिव्यौषधियों का प्रयोग करते हैं। अश्विनीकुमारों का कहना है शीघ्र ही मैं नेत्रज्योति पुनः पा लूंगा।

सुकन्या : यह अवश्य होगा किन्तु हमें अपने वचन निभाने हैं। अश्विनीकुमारों को सोमपान का अधिकार मिले।

च्यवन : मिलेगा। शापादपि शरादपि। यदि इन्द्र समझाने से देंगे तो ठीक अन्यथा भृगुवंशी ब्राह्मण अन्याय के विरुद्ध शस्त्र उठाने में कभी चूका नहीं है।

अश्विनीकुमार : ठीक है। किन्तु शल्यक्रिया के तत्काल बाद भावावेश ठीक नहीं। (सुकन्या से) अब आप विश्राम करें। पति को विश्राम करने दें।

— पटाक्षेप —

तृतीय दृश्य

[यज्ञशाला में शर्याति बैठे हैं। सोमरस पीसकर छाना जा रहा है। उसमें दूध तथा मधु मिलाया जा रहा है। दूसरी ओर च्यवन तथा सुकन्या बैठे हैं।]

च्यवन : राजन्! यज्ञ सम्पन्न हुआ। अब सोमपान हेतु देवगणों का आह्वान करना है।

शर्याति : ऋषिप्रवर! सोम तैयार है। आप देवताओं का आह्वान करें।

च्यवन : अपां सोममृता अभूम
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान्।

इन्द्र : (प्रकट होकर) कल्याणमस्तु। आपके आह्वान पर देवगण उपस्थित हैं। सोम लाया जाये।

च्यवन : राजन्! शर्याति!! सोम का कलश लायें। सोम चषकों में डालें। प्रथम चषक इन्द्र के लिये, द्वितीय मित्र हेतु, तृतीय वरुणार्थ, चतुर्थ अग्निदेव को और यह चषक युगल अश्विनीकुमारों के लिये।

इन्द्र : ऋषिप्रवर! ध्यान रहे देवकर्म में प्रमाद अनुचित है।

च्यवन : प्रमाद कैसा?

इन्द्र : प्रमाद भी बताना होगा। सोमरस के अधिकारी देवों में अश्विनीकुमारों का नाम लेना प्रमाद नहीं तो और क्या है?

च्यवन : क्या अश्विनीकुमार देव नहीं हैं?

इन्द्र : वे देव नहीं, वैद्य हैं।

च्यवन : पर वे देव-वैद्य हैं। साधारण वैद्य नहीं।

इन्द्र : ऋषिप्रवर! तर्क व्यर्थ है। परम्परा को मत भूलें। आज तक अश्विनीकुमारों को सोमरस कभी अर्पित नहीं हुआ।

च्यवन : भृगुवंशी गलत परम्पराओं को तोड़ने में गर्व का अनुभव करते रहे हैं। आप तर्क दें कि अश्विनीकुमार सोमरस क्यों नहीं पा सकते?

इन्द्र : तर्क अपने पूर्वजों से पूछो जिन्होंने आज तक अश्विनीकुमारों को कभी सोम रस नहीं दिया।

च्यवन : जो कभी नहीं हुआ वह आज भी नहीं होगा—यह तर्क नहीं है। तर्क तो यह है कि जो कभी नहीं हुआ वह यदि उचित है तो उसे हम आज अवश्य करेंगे। इसी प्रकार तो मानव जाति का विकास हुआ है।

इन्द्र : (वज्र निकाल कर) आज एक क्षण में ही समस्त मानव जाति का विकास हुआ जाता है। देवताओं का आह्वान करके फिर उनका यह अपमान मैं नहीं सहन करूँगा। यह सोम हमारे लिये बना है, इसमें कोई दूसरा हाथ लगायेगा तो यह वज्र उस हाथ को शतधा विदीर्ण कर देगा।

च्यवन : सोमरस-पान एक दिव्य आध्यात्मिक क्रिया है। देवराज इसमें शस्त्र प्रदर्शन न करें तो यज्ञ की गरिमा बनी रहेगी।

इन्द्र : यज्ञ की गरिमा आप नष्ट कर रहे हैं। देवों के साथ अदेवों को सोमरस पिलायेंगे और दुहाई देंगे यज्ञ की गरिमा की।

च्यवन : देवराज ! यज्ञ की गरिमा भेद-भाव मिटाने से नहीं, रक्त बहाने से, नष्ट होती है।

इन्द्र : अन्याय के प्रतिकार के लिये भी जो शस्त्र न उठे उस शस्त्र को धिक्कार है।

च्यवन : न्याय क्या है, अन्याय क्या ? यह विवेक सिखाने के लिये भृगुवंशी देवताओं को नहीं बुलाते। मन्त्रद्रष्टा ऋषि स्वयं धर्माधर्म विवेक कर सकते हैं।

इन्द्र : शास्त्रार्थ मैं नहीं करूँगा। शस्त्र उपस्थित है। (वज्र समुद्यत करके) भृगुवंशी च्यवन हों या पुरुवंशी शर्याति, सोम अश्विनी न पी सकेंगे।

च्यवन : जब शास्त्र हार जाता है तो ब्राह्मण के लिये भी शस्त्र उठाना परम धर्म बन जाता है—यह भृगुवंश की सनातन परम्परा है। तुम्हारे वज्र का उत्तर—

[इसी बीच मद नामक एक असुर आ जाता है।]

मद : यह मद राक्षस है, महर्षि च्यवन ! आप आज पुरोहित हैं, यज्ञशाला में ऋषिवेश में हैं। आपके लिये शस्त्र-प्रयोग मर्यादोचित न होगा। आप अश्विनीकुमारों को सोमरस दें। इन्द्र का वज्र मैं सम्भालूँगा।

च्यवन : मदासुर ! तुम यहाँ कैसे ?

मद : शुक्राचार्य ने भेजा है। उन्हें आभास था कि इन्द्र उनके सजातीय बन्धु च्यवन के मार्ग में बाधा बनेंगे।

च्यवन : पर असुर की सहायता से च्यवन सुरों को जीते—यह अनुचित है।

मद : अनुचित तो सुरासुरों में भेद-भाव करना है। सत्य का साथ असुर भी दे तो उचित, असत्य का साथी सुर भी अनुचित—शुक्राचार्य की यही नीति है।

च्यवन : इन्द्र ! अश्विनीकुमारों को अपना अधिकार पाने दो।

इन्द्र : कभी नहीं। (वज्र दिखाता है)

मद : (वज्र पर प्रहार कर उसे खण्डित करते हुए) इन्द्र ! लो शस्त्र सम्भालो।

च्यवन : हे अश्विनीकुमारों ! सोम ग्रहण करो।

[अश्विनी सोम पीते हैं।]

मद : इन्द्र ! आज मेरा खड्ग तुम्हारे रक्त से रंजित हो असुरकुल को पवित्र कर देगा।

च्यवन : मद ! व्यर्थ रक्तपात अनुचित है। तुम जाओ। अश्विनीकुमारों ने सोम पिया। हमारा वचन पूरा हुआ।

— पटाक्षेप —

[द्वितीय अङ्क समाप्त]

तृतीय अङ्क

प्रथम दृश्य

[माहिष्मती में राजा सहस्रार्जुन की गुप्त-मन्त्रणा सभा]

सहस्रार्जुन : आज की यह सभा मैंने एक विशेष प्रयोजन से आहूत की है। ब्राह्मण-वर्ग सदा क्षत्रियों पर आश्रित रहा है। कभी अध्यापन के निमित्त कभी यज्ञ कराने के बहाने, ब्राह्मण क्षत्रियों की सम्पदा का अपहरण करते रहते हैं। कोई क्षत्रिय आज तक किसी ब्राह्मण का आश्रित नहीं रहा। ऐसी स्थिति में मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि ब्राह्मण को क्षत्रिय से बड़ा मानना कहाँ तक उचित है।

अमात्य : राजन् ! आप राजा हैं। राजा के लिए सभी प्रजा समान है। फिर ब्राह्मण-क्षत्रिय के बीच ऊँच-नीच की बात आपके मन में कैसे आयी ?

राजा : मन्त्रिप्रवर ! ऊँच-नीच की बात मेरे मन में नहीं आयी। यह विषमता तो ब्राह्मणों ने उत्पन्न की है।

अमात्य : मान लें कि ब्राह्मण अपने को ऊँचा मानता है किन्तु क्या उसका समाधान यह है कि क्षत्रिय अपने को ऊँचा मानने लगें ?

राजा : क्षत्रिय मानने से ऊँचा नहीं हो जाता, वह स्वतः ही ऊँचा है।

अमात्य : राजन् ! मैं मानता हूं कि ऊँच-नीच का भेदभाव करना ही गलत है।

राजा : आप यह बात ब्राह्मणों से कहिए।

अमात्य : अवसर है तो आपको कह रहा हूँ। अवसर आयेगा तो ब्राह्मणों से भी कहूँगा।

राजा : (सेनापति की ओर मुड़कर) केवल प्रधानामात्य अपनी बात कह रहे हैं। हम सेनापति का भी विचार जानना चाहेंगे।

सेनापति : राजन् ! योद्धा विचार में नहीं, कर्म में जीता है। विचार अमात्यों का धर्म है, हमारा धर्म शस्त्र है। श्रीमन्त की आज्ञा होगी उस दिन यह तलवार शत्रु का काल बन जायेगी।

अमात्य : सेनापते ! शस्त्र कभी धर्म नहीं होता। विचार पूर्वक उठाया गया शस्त्र ही धर्म है। अविचारपूर्वक शस्त्र का प्रयोग अधर्म ही होगा।

राजा : अमात्य ! आप सेना को विद्रोह के लिए प्रेरित कर रहे हैं। क्या इतने बड़े राष्ट्र का सञ्चालन या रक्षण इस आधार पर हो सकता है कि सेना अनुशासित रहने के स्थान पर स्वेच्छाचारी हो जाये ?

अमात्य : राजन् ! विचार स्वेच्छाचार नहीं है।

राजा : सेना के सन्दर्भ में विचार स्वेच्छाचार ही है।

अमात्य : विचार स्वेच्छाचार बन सकता है, यदि विवेकहीन हो जाये।

राजा : सेना का कार्य विवेकाविवेक की सूक्ष्म रेखायें खींचना नहीं, आज्ञा का पालन है।

अमात्य : आज्ञा किसकी ? राजा की या मन्त्रिमण्डल की।

राजा : राजा की। मन्त्रिमण्डल फुरसत के समय वाणी-विलास के लिए है, युद्ध के समय राजा ही नेतृत्व प्रदान कर सकता है।

अमात्य : राजन् ! सामूहिक चिन्तन को वाणी विलास न कहें। पञ्च परमेश्वर हैं।

राजा : परमेश्वर केवल राजा है।

अमात्य : राजा परमेश्वर नहीं, प्रजा का सेवक है।

राजा : अमात्य ! हमारे और आपके बीच का मतभेद मौलिक है। हम आपको पदच्युत करते हैं।

अमात्य : (शस्त्र अर्पित करते हुए) राजन् ! पद का लोभ मुझे सत्य कहने से नहीं रोक सकता। मैं पद-मुक्त होता हूँ।

एक सामन्त : राजन् ! अमात्य ! त्वरा का कार्य विवेकहीनता का कार्य होता है। वंश-परम्परागत अमात्य का इतनी छोटी-सी बात पर पृथक् होना समीचीन नहीं।

अमात्य : सामन्त ! राजा अपने को परमेश्वर माने—यह छोटी-सी बात नहीं। मन्त्रिमण्डल के सामूहिक चिन्तन को वाणी-विलास बताना भी छोटी बात नहीं है। रही वंश परम्परा, सो उसमें मेरा विश्वास नहीं (जाना चाहता है, कुछ सामन्त रोकना चाहते हैं, राजा सङ्केत से सामन्तों को निषेध करते हैं। अमात्य चला जाता है।)

राजा : अमात्य गये। जो और भी जाना चाहे, जायें। राज्य किसी के भरोसे नहीं टिका है। एक अमात्य गया, दस आ जायेंगे।

[पूरी सभा स्तब्ध बैठी रहती है।]

राजा : (कुछ रुक कर) सेनापते ! पूरे राज्य में घोषणा करवा दें कि आज से राज्य में केवल क्षत्रिय ही शस्त्र बाँध सकते हैं, कोई अन्य नहीं।

एक सामन्त : राजन् ! यह घोषणा अति हो जायेगी। कुछ सामन्त भी क्षत्रिय नहीं हैं, तो क्या वे शस्त्र रखना छोड़ दें ? फिर परशुराम के आश्रम के सभी भृगुवंशी ब्राह्मण परशु रखना अपना धर्म समझते हैं। वे शस्त्र किस प्रकार छोड़ सकते हैं ?

राजा : वे शस्त्र न छोड़ेंगे तो उनका शस्त्र तोड़ दिया जायेगा। ब्राह्मण हैं तो शस्त्र कैसे रख सकते हैं ? वर्ण-व्यवस्था में जब दान देना, दान लेना, यज्ञ करना, यज्ञ करवाना, वेद पढ़ना तथा वेद पढ़ाना ब्राह्मण का कर्म सुनिश्चित कर दिया गया तो उसका शस्त्र रखना धर्मसम्मत कैसे हो गया ? क्या कोई क्षत्रिय दान लेने जैसा ब्राह्मण कर्म करे तो धर्म सम्मत माना जायेगा ?

सामन्त : राजन् ! ब्राह्मण आपद्धर्म के रूप में अपने कर्मों के अतिरिक्त शेष वर्णों के भी कर्म कर सकता है किन्तु अन्य वर्ण ब्राह्मण कर्म नहीं कर सकते।

राजा : क्या खूब तर्क है ? ब्राह्मण क्षत्रिय कर्म करेगा, किन्तु क्षत्रिय ब्राह्मण कर्म नहीं करेगा। इससे बढ़कर पक्षपात का उदाहरण कहीं मिलेगा ? फिर मेरे रहते ब्राह्मणों पर कौन सी आपत्ति आ रही है कि आपद्धर्म के रूप में शस्त्र धारण करे।

सामन्त : राजन् ! अपनी रक्षा का अधिकार सब वर्णों को है। आत्म-रक्षा के लिये कोई भी शस्त्र धारण कर सकता है—यह सनातन परम्परा है।

राजा : ऐसी परम्पराओं को तोड़ना ही मेरा उद्देश्य है जिनसे क्षत्रियों की मान-हानि हो। रक्षा करना क्षत्रियों का कार्य है, केवल वही शस्त्र धारण करेगा।

एक पुरोहित : राजन् ! यदि क्षत्रियों का शस्त्र रक्षक के स्थान पर भक्षक बन जाये तो ?

राजा : तो ब्राह्मणों का शस्त्र क्षत्रियों के विरुद्ध उठेगा—यही न आप कहना चाहते हैं ? यह राज-द्रोह नहीं तो और क्या है ?

पुरोहित : ब्राह्मण किसी से द्रोह नहीं करता। वह प्राणिमात्र का मित्र है।

राजा : विप्र ! ब्राह्मण का यही जाति-मद मुझे दूर करना है।

पुरोहित : मैत्री के स्वर में मद का दर्शन कोई मदमत्त ही कर सकता है।

[झपट कर भागता है।]

राजा : (अनुचरों से)—इस पुरोहित को बन्दी बनाया जाये। राजा को मदमत्त कह कर यह बचने न पाये। (अनुचर भागते हैं, पुरोहित का पीछा करते हैं। फिर खाली लौट आते हैं।)

राजा : क्या उस दुर्बल पुरोहित को आप लोग पकड़ कर नहीं लाये।

एक अनुचर : महाराज ! वह भाग गया।

राजा : भाग गया ! तुम क्या करते रहे ?

दूसरा अनुचर : वह एक घोड़े पर जाते हुए सामन्त को घोड़े से गिराकर उस घोड़े पर चढ़ भागा। हम केवल पदाति थे।

राजा : और तुम यह सब देखते रहे। सेनापते ! इन्हें बन्दी बनाया जाये। बीस दिन तक ये काल कोठरी में भूखे बन्द रखे जायें फिर आधा भूमि में गाड़कर इनके शरीर पर दही छिड़ककर कुत्तों से इन्हें नुचवा दिया जाये।

एक पुरोहित : महाराज ! यह व्यवस्था फिर हो सकती है। अभी उस पुरोहित को पकड़ने की चिन्ता की जाये। वह भृगुवंशी था। मुझे आशंका है वह यहां से भागकर परशुराम के आश्रम में न केवल शरण लेगा प्रत्युत वहां राजविद्रोह को भी भड़कायेगा।

राजा : ओह ! तो वह पुरोहित भृगुवंशी है। ब्राह्मणों में भृगुवंशी ही क्षत्रियों के बीच अधिकतर बाधा बनते रहे हैं। इन भृगुवंशियों का काम अग्नि की भट्टियों में शस्त्रास्त्रों का निर्माण करना था। किन्तु इन्होंने स्वयं ही शस्त्र चलाने का काम भी चालू कर दिया। अधिकतर भृगुवंशियों ने राजघरानों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और आज वे क्षत्रिय राजाओं की निष्कण्टकता को चुनौती देने लगे हैं। (मुख मोड़कर) सेनापते ! आज ही परशुराम के आश्रम की ओर कूच करना होगा। चुने हुए ५०० सैनिक साथ ले लें। पूरे एक हजार हाथ होने चाहियें। उस भृगुवंशी पुरोहित सहित परशुराम के दल का समूलोन्मूलन करना है। (कुछ रुक कर)

एक बात ध्यान रहे। परशुराम के आश्रम की कामधेनु नस्ल की गौएँ नष्ट न की जायें। उन्हें जीते जी ही पकड़ कर लाया जाये। इन गौओं के दूध पीकर ही ये भृगुवंशी इतने मुटिया गये हैं कि उनका नेता परशुराम अपने को भगवान् बताता फिरता है। यदि इनकी ये गौएँ हम छीन लायें तो ये भृगुवंशी तो अपनी मौत आप ही मर जायेंगे।

सेना तैयार हो। सेना का नेतृत्व मैं स्वयं करूँगा।
सेनापति—तथास्तु।

— पटाक्षेप —

द्वितीय दृश्य

[परशुराम का आश्रम]

जमदग्नि : वत्स परशुराम ! हम ब्राह्मण हैं। प्राणिमात्र की हित-कामना करना हमारा धर्म है।

परशुराम : तात ! इसमें कोई सन्देह नहीं है।

जमदग्नि : तुम्हारा उग्र आचरण ब्राह्मणानुकूल नहीं है। इसीलिये यह चर्चा आज उठायी है।

परशुराम : पिताजी ! स्पष्ट करें। मेरा कौन सा आचरण ब्राह्मण-विरुद्ध है ?

जमदग्नि : किसी विशेष आचरण की ओर मेरा संकेत नहीं। सामान्य आचरण की बात है।

परशुराम : पिताजी ! एक बात जान लें। अन्याय का साथ न मैंने दिया है, न दूँगा।

जमदग्नि : सो कौन कहता है ? उदासीन रह सकते हो।

परशुराम : उदासीन तो भगवान् भी नहीं। पापी को दण्डित करने के लिये उन्होंने भी काल का दण्डपाश निर्मित किया है।

जमदग्नि : हम तो भगवान् नहीं हैं।

परशुराम : भगवान् का अंश तो हैं। उपनिषदों में हमारे पूर्वजों ने प्रतिपादित किया है नर में ही नारायण है। जो पाप करता है, अपराधी वही नहीं हैं, जो पाप का प्रतिकार नहीं करता, अपराधी वह भी है।

जमदग्नि : पृथ्वी पर चमड़ा नहीं मढ़ा जाता। काँटों से बचने के लिये पाँव में ही जूता पहना जाता है।

परशुराम : पृथ्वी पर काँटे रहने ही न दिये जायें तो कैसा हो ?

जमदग्नि : पृथ्वी के काँटे कभी समाप्त हुए हैं क्या ?

परशुराम : यह सोच कर काँटों को नष्ट न किया जाये—यह बुद्धिमत्ता न होगी।

जमदग्नि : काँटों को नष्ट करना क्षात्रधर्म है, ब्राह्मणधर्म नहीं।

परशुराम : धर्म को भी मनुष्य ने टुकड़ों में बाँट दिया—यह ब्राह्मण धर्म है, यह क्षत्रिय धर्म है। धर्म धर्म है, उसका विभाजन कैसा ?

जमदग्नि : सभी मनुष्यों का स्वभाव एक-सा नहीं है। इसलिए धर्म भी एक नहीं हो सकता।

परशुराम : फिर कोई किसी पर अपना धर्म थोपता क्यों है ? मैं अपने स्वभावानुकूल धर्म चुनने में स्वतन्त्र हूँ।

जमदग्नि : इतने स्वतन्त्र नहीं हो। जाति समाज की मर्यादायें हैं।

परशुराम : तात ! आप हमारी कुल-मर्यादा हमसे अधिक जानते हैं। विष्णु को मदमस्त देखकर

भृगु ने उनके वक्षःस्थल पर प्रहार किया, भले ही उसका परिणाम कुछ भी रहा और च्यवन का इन्द्र से सङ्घर्ष तो अभी कल की ही बात है।

जमदग्नि : अब तुम्हें कैसे समझाऊँ ? क्षत्रियों का तुम पर बहुत आक्रोश है। कल वे अनिष्ट न कर दें।

परशुराम : और आप इस भय से मुझे सच के लिये लड़ने से रोक रहे हैं ? आप क्षत्रियों से निश्चिन्त रहें। यह परशु उनके लिये पर्याप्त है।

जमदग्नि : क्षत्रियों का अनाचार बढ़ रहा है। पहले वे ब्राह्मणों के मार्ग-दर्शन में मर्यादा का पालन करते थे। आज वे स्वेच्छाचारी हो गये हैं। लक्ष्मीमद, राजमद तथा बलमद ने उन्हें अन्धा बना दिया है।

परशुराम : मेरा यह परशु उन्हें आँखें प्रदान करेगा।

[इसी बीच सहस्रार्जुन की सभा से भागा पुरोहित प्रवेश करता है।]

पुरोहित : महर्षि जमदग्नि तथा भगवान् परशुराम को राजा सहस्रार्जुन के भृगुवंशी पुरोहित का प्रणाम स्वीकार हो।

परशुराम : भृगुवंशी होकर राज-पुरोहित ! अरे भार्गव ! एक राजा का पुरोहित बनते तुम्हें लज्जा न आयी।

पुरोहित : पौरोहित्य में लज्जा कैसी ?

परशुराम : कोई पुरोहित को पुरोहित माने तब न ? आज पुरोहित का वह सम्मान कहां जो महर्षि च्यवन का था ? पुरोहित का आज राजा क्या अर्थ समझते हैं, पता है ? पुरोहित का अर्थ है—दक्षिणा का लोभी एक ऐसा पेटू ब्राह्मण जो दुनिया का कोई और काम करने में असमर्थ होने के कारण यजमान के ठीक-गलत सब कामों में हाँ में हाँ मिलाये और कुछ रटे-पिटे वेद मन्त्रों को बिना समझे मौके बेमौके बोलता रहे, चाहे कोई सुने या न सुने। (जमदग्नि से) पिताजी ! भृगुवंशियों को यह आदेश देना होगा कि आज से उनमें कोई पौरोहित्य नहीं करेगा।

पुरोहित : भगवन् ! इस समय एक महत्त्वपूर्ण कार्यवश उपस्थित हुआ हूँ।

परशुराम : क्या मेरी जन्मपत्री में कोई शनि का प्रकोप आपको दिखाई दिया है, कि उसकी शान्ति का उपाय बताने आये हैं। अपने शनि की शान्ति मैं इस परशु के लोह-दान से कर लेता हूँ। पुरोहित की आवश्यकता नहीं।

पुरोहित : भगवन् ! अशनि* पर शनि असर नहीं कर सकता। कार्य कुछ और है। सहस्रार्जुन ने ब्राह्मणों के विरुद्ध अभियान करना चाहा तो मैंने उसका विरोध किया है। उसने मुझे पकड़ना चाहा—

जमदग्नि : और तुम भागकर यहाँ आ गये ? अब तुम्हारा पीछा करते राजा यहाँ आ गया तो मुसीबत हमारी होगी।

---

*अशनि के दो अर्थ अभिप्रेत हैं—१. वज्र २. जो शनि नहीं हैं।

परशुराम : पिताजी ! मुसीबत कैसी ? राजा आयेगा तो यथोचित सत्कार करेंगे। शास्त्र चाहेगा तो शास्त्र पायेगा, शस्त्र चाहेगा तो शस्त्र पायेगा। मेरे आगे चार वेद हैं तो पीठ पर धनुष-बाण—

अग्रतश्चतुरो वेदान् पृष्ठतः सशरं धनुः ।

आप अब विश्राम करें। मैं इस भार्गव पुरोहित से कुछ आवश्यक जानकारी लेना चाहता हूँ।

जमदग्नि : कल्याणमस्तु ।

[जाते हैं।]

परशुराम : भार्गव ! सहस्रार्जुन ने सभा में ऐसा क्या कहा कि तुम्हें उसके विरुद्ध मुँह खोलकर उसका कोप भाजन बनना पड़ा ?

भार्गव पुरोहित : सहस्रार्जुन ने क्या नहीं कहा सो पूछिये ? वह ब्राह्मणों का वर्चस्व स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

परशुराम : जो वर्चस्व स्थापित करना चाहे, वह ब्राह्मण ही नहीं है। ब्राह्मण की तो घोषणा है— विद्या ददाति विनयम् ।

भार्गव पुरोहित : निरङ्कुश व्यक्ति विनयशीलता को निर्बलता समझता है। उसका सबसे बड़ा शत्रु वह है जो स्वच्छन्दता का सेवन नहीं करता।

परशुराम : तुम चिन्ता न करो। सहस्रार्जुन कल तक यहाँ अवश्य आ जायेगा। आवश्यक यह है कि रात भर में उसके स्वागत की व्यवस्था कर ली जाये। तुम उसकी सैनिक शक्ति कितनी आँकते हो ?

भार्गव पुरोहित : वह आश्रम में पूरी सेना सहित न आयेगा। कुछ गिने चुने सैनिकों सहित ही आयेगा।

परशुराम : किन्तु हमें हर स्थिति के लिये तैयार रहना है। (करतल ध्वनि करते हुए) बटुक ! (बटुक आता है) बटुक ! देखो शस्त्रागार के अध्यक्षों को बुला लाओ।

बटुक : कौन से शस्त्रागार के अध्यक्ष ? मानवशस्त्रों के अथवा दिव्यशस्त्रों के ?

परशुराम : दोनों।

[बटुक जाता है तथा दो शस्त्रागाराध्यक्षों को बुला लाता है।]

परशुराम : हमारे मानवशस्त्रागार में इस समय कौन-कौन से शस्त्र तैयार हैं ?

अध्यक्ष : परशु, शर, शङ्कु, असि, तोमर, भिन्दिपाल, नाराच, वैतस्तिक.....

परशुराम : साधु साधु ! शस्त्रागाराध्यक्ष ! आपकी तत्परता प्रशंसनीय है। (दूसरे अध्यक्ष से) और दिव्यास्त्र कौन-कौन से तैयार हैं ?

[अध्यक्ष भार्गव पुरोहित की ओर देखकर उसे बाहर भेजने का सङ्केत करता है।]

परशुराम : (पुरोहित से) आप क्षण भर के लिए बाहर जायें।

[पुरोहित जाता है।]

अध्यक्ष : अनजान व्यक्ति के सम्मुख दिव्यास्त्रों का उल्लेख ठीक न समझकर मैंने अतिथि का अपमान किया। क्षमा-प्रार्थी हूँ।

परशुराम : क्षमाप्रार्थी मैं हूँ कि मैंने अज्ञात व्यक्ति के सम्मुख आपसे सामरिक महत्व का प्रश्न किया। अब बतायें।

अध्यक्ष : भगवन् ! ब्रह्मास्त्र तो सदा से हमारा अमोघशस्त्र रहा ही है। इसके अतिरिक्त पाशुपत, आग्नेय, वारुण तथा वायव्य शस्त्र भी तैयार हैं। नारायणास्त्र तैयार है किन्तु उसका परीक्षण अभी नहीं हुआ।

परशुराम : इन दिव्यास्त्रों का रहस्य किसी को प्रकट तो नहीं किया गया ?

अध्यक्ष : ब्राह्मणों के अतिरिक्त दिव्यास्त्रों का रहस्य किसी को न दिया जाये—यह पूरी सावधानी बरती गयी है। कुछ व्यक्तियों ने ब्राह्मण का छद्मवेश बनाकर इनका रहस्य जानना चाहा किन्तु हमारे गुप्तचरों ने उन्हें पकड़ लिया और इन शस्त्रों का रहस्य बाहर जाने से बच गया।

परशुराम : आप दोनों से एक गुप्त मन्त्रणा करनी है। कल तक राजा सहस्रार्जुन इस आश्रम में आएगा। वह मैत्रीभाव रखे तो हमें शत्रुता करनी नहीं। ५००-७०० तक सैनिक आकर उत्पात करें तो मानवशस्त्र पर्याप्त हैं। किन्तु यदि चतुरङ्गिणी विशाल हो तो दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना पड़ सकता है।

अध्यक्ष : दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने की सम्मति मैं न दूँगा।

परशुराम : परशुराम ने परशु को छोड़कर आज तक किसी शस्त्र का प्रयोग नहीं किया। मेरा तो बाण में भी विश्वास नहीं। लक्ष्य चूक जाए तो निरपराध की हत्या हो सकती है। परशु लक्ष्य पर ही लगता है। किन्तु आपत्काल में दिव्यास्त्रों का प्रयोग करना पड़ सकता है।

अध्यक्ष : हम मर जायेंगे किन्तु दिव्यास्त्रों का प्रयोग न करेंगे। दिव्यास्त्रों का प्रयोग प्रकृति का सन्तुलन समाप्त कर पशु-पक्षी तथा वनस्पति तक को नष्ट कर देता है। जहाँ दो ब्रह्मास्त्र भिड़ जायें वहां १२ वर्ष तक वर्षा नहीं होती।

परशुराम : ठीक है, दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं करना है। किन्तु यदि शत्रु अधिक संख्या में हुआ तो हमारे पास कोई सेना तो है नहीं। आप लोगों के बुद्धिबल से विकसित दिव्यास्त्र ही ऐसी स्थिति में एकमात्र सहारा हैं।

अध्यक्ष : भगवन् ! भुजबल पर इतना अविश्वास क्यों ?

परशुराम : स्वीकार है। मुझे आपका निर्णय स्वीकार है। कल का युद्ध परशु से ही होगा। लेकिन हम दिव्यास्त्र भले प्रयोग न करें, दिव्यास्त्रों से होने वाली हानि तो होगी ही।

अध्यक्ष : सो कैसे ?

परशुराम : ब्राह्मण समझकर हमने द्रोणाचार्य को दिव्यास्त्रों का रहस्य दे दिया। उन्होंने मोहवश वह ज्ञान पाण्डवों को दे दिया। पाण्डव कभी भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर सकते हैं।

अध्यक्ष : हम अपनी ही सीमा तक दायित्व ले सकते हैं। द्रोण को ब्राह्मण समझकर रहस्य दिया। उन्हें उस रहस्य को क्षत्रियों को नहीं देना चाहिए था।

परशुराम : अब आगे से हम दिव्यास्त्रों का रहस्य किसी को भी न देंगे। चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो ?

अध्यक्ष : विद्या की रक्षा कैसे होगी ?

परशुराम : यह विद्या अब भारत में रहने योग्य नहीं है। अविवेकी के पास यह विद्या जाए इसकी अपेक्षा नष्ट हो जाना ही ठीक है। अब आप विश्राम करें। मैं भी दो पहर विश्राम कर लूं। कल प्रातः जल्दी उठकर ब्रह्मकर्म से निवृत्त होना है ताकि सूर्योदय के साथ राजा के स्वागत की तैयारी कर सकूं। राजा कैसा भी हो, मधुपर्क का अधिकारी है, पूज्य है। कोई यह न कहे कि परशुराम ने शस्त्रबल के गर्व में राजा की अवज्ञा की।

अध्यक्ष : भगवन् ! कल यदि युद्ध ही करना हो तो किस रथ, घोड़े, सूत तथा कवच की व्यवस्था होगी, सो आज्ञा दी जाए ताकि रात्रि में सब तैयारी हो सके।

परशुराम : वयस्य ! जब भुजबल से ही युद्ध जीतना है तो यह चिन्ता भी क्यों ? परशुराम के लिए पृथ्वी ही रथ है, वेद ही अश्व हैं, वायु ही सारथि है तथा सरस्वती ही कवच है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करें। वीर उपकरणों पर आश्रित नहीं रहते।

[सब जाते हैं]

— पटाक्षेप —

तृतीय दृश्य

[परशुराम का आश्रम। समय प्रातः काल]

[परशुराम के पास दो बटुक आते हैं]

बटुक : भगवन् ! सहस्रार्जुन राजा आश्रम के निकट ही आ गये हैं।

परशुराम : राजा के साथ कितने लोग हैं ?

बटुक : लगभग ५००-६०० होंगे।

परशुराम : चलो हम आगे चलकर राजा की अगवानी करें।

बटुक : आपका राजा की अगवानी के लिये जाना उचित नहीं। ब्रह्मर्षि सदा राजा से ऊपर रहे हैं।

परशुराम : सामान्यतः तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु इस समय सहस्रार्जुन आवेश में हैं। सम्भव है मेरे इस अतिरिक्त सम्मान प्रदर्शन से उनका आवेश शान्त हो जाये और व्यर्थ का रक्तपात रुक जाये (बटुक से) जल लेकर साथ चलो।

बटुक : जो आज्ञा (जल लेकर पीछे-पीछे चलता है। परशुराम आगे-आगे चलते हैं।)

सहस्रार्जुन : (दूर से परशुराम को देखकर अपने एक योद्धा से) परशुराम इधर ही आ रहे हैं। क्या भयभीत होकर मेरी शरण मे आ रहे हैं। यदि ये शस्त्र का त्याग कर दें तथा अपनी कामधेनु मुझे समर्पित करदें तो मैं इन्हें अभय प्रदान कर सकता हूँ।

योद्धा : परशुराम ये कभी न करेंगे। आप उनसे बात कर देखें।

सहस्रार्जुन : (परशुराम से) ब्राह्मण ! मैं राजा सहस्रार्जुन हूँ ।

परशुराम : (आशीर्वाद देने की मुद्रा में) स्वस्ति ! आप प्रणाम करने का शिष्टाचार छोड़ सकते हैं, पर ब्राह्मण आशीर्वचन देने का शिष्टाचार नहीं छोड़ सकते ।

सहस्रार्जुन : मेरा विश्वास शिष्टता में है । शिष्टाचार में नहीं ।

परशुराम : यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई । आप शिष्ट हैं । जल लें । हाथ-मुँह धोयें तो मधुपर्क उपस्थित करूँ ।

सहस्रार्जुन : मधुपर्क अवश्य लूंगा । मुझे कामधेनुओं का दूध, दही, घी बहुत प्रिय है, किन्तु उससे पूर्व एक आवश्यक कार्य है । एक पुरोहित सभा में अशिष्टता करके भागा है, उसे मेरे सम्मुख उपस्थित किया जाये ।

परशुराम : पहले यह पूछ तो लें कि वह पुरोहित मेरे आश्रम में है भी या नहीं ?

सहस्रार्जुन : भार्गव पुरोहित सहस्रार्जुन से विद्रोह कर आपके आश्रम में न आयेगा तो कहाँ जायेगा ?

परशुराम : यह आपका भ्रम है । मेरा आश्रम कोई राजद्रोहियों का अड्डा नहीं है ।

सहस्रार्जुन : (आदेश के स्वर में) वह पुरोहित यहीं है । सबसे पूर्व उसे उपस्थित किया जाये ।

परशुराम : राजन् ! यह आश्रम है, राजसभा नहीं है । आदेश के स्वर में बात न करें । आश्रम की मर्यादायें राजसभा की मर्यादा से भिन्न होती हैं ।

सहस्रार्जुन : (ऊँचे स्वर में) पुरोहित उपस्थित किया जाये ।

परशुराम : वह पुरोहित यहाँ नहीं है । यदि होता भी तो शरणागत को कोपाविष्ट राजा के सम्मुख उपस्थित न करता ।

सहस्रार्जुन : राजाज्ञा की अवज्ञा का फल मालूम है ।

परशुराम : हम ब्राह्मणों का राजा सोम है— सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ।

सहस्रार्जुन : परशुराम ! मर्यादा में रहें । राजा राजा है—वह ब्राह्मणों का भी राजा है ।

परशुराम : राजन् ! ब्राह्मण से क्षत्रिय मर्यादा सीखते हैं, उन्हें मर्यादा सिखाते नहीं हैं । मर्यादा जानने के लिए आप आश्रम में पधारें ।

सहस्रार्जुन : आश्रम न कहें; शस्त्रागार कहें । परशुराम के आश्रम में ब्रह्मचर्चा नहीं, शस्त्रचर्चा होती है ।

परशुराम : ब्रह्मचर्चा के रसिकों के लिए ब्रह्मचर्चा भी है, किन्तु शस्त्ररसिकों के लिये शस्त्रचर्चा का अभाव नहीं है—

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते ।

सहस्रार्जुन : शस्त्र से राष्ट्र-रक्षा राजा करता है, आश्रमवासी नहीं ।

परशुराम : राजा राष्ट्र की रक्षा हेतु शस्त्र उठाता है किन्तु शस्त्रों का निर्माण आश्रमों में रहने वाले चिन्तक ही करते हैं ।

सहस्रार्जुन : शस्त्रों का निर्माण करने वाले यदि स्वयं ही शस्त्रों का प्रयोग भी करने लगें तो ?

परशुराम : यदि राजा मदमत्त हो तो यह भी करना पड़ सकता है।

सहस्रार्जुन : मदमत्त शब्द का उस भार्गव पुरोहित ने भी राजसभा में प्रयोग किया था।

परशुराम : शब्द पर न जायें। महाराज अपने आने का प्रयोजन बतायें।

सहस्रार्जुन : बताया न ? उस भार्गव-पुरोहित को प्राप्त करना।

परशुराम : सो न हो सकेगा। अन्य प्रयोजन कहें।

सहस्रार्जुन : आश्रम की कामधेनु चाहिये। दे सकोगे ?

परशुराम : कामधेनु तो आश्रम की मेरुदण्ड है। उसके बिना एक दिन भी यज्ञकर्म नहीं हो सकता। उसे कैसे दिया जा सकता है ?

सहस्रार्जुन : तो फिर आने का प्रयोजन क्यों पूछ रहे हो ? न भार्गव पुरोहित को दे सकते हो न कामधेनु को। चलो, अपने दिव्यास्त्रों में से कोई अस्त्र दे सकते हो ?

परशुराम : दिव्यास्त्रों का रहस्य केवल ब्राह्मणों को दिया जाता था, अब कल से तो उसे ब्राह्मणों को भी न देने का निर्णय लिया है।

सहस्रार्जुन : (योद्धा से कान में) कामधेनुओं को अपने सैनिक बलपूर्वक लेकर भागें। तब तक परशुराम को मैं यहाँ उलझाये हूँ। यदि परशुराम ने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर दिया तो हममें से कोई बचकर न जा सकेगा।

[योद्धा जाता है। पर्दे के पीछे से गायों के करुण रँभाने का स्वर आता है।]

परशुराम : बटुक ! देखो यह गायें क्यों करुण स्वर में रँभा रही हैं ?

[बटुक जाकर आता है।]

बटुक : भगवन् ! कुछ सैनिक गायों को बलपूर्वक अपहरण कर रहे हैं।

परशुराम : बटुक ! तुम रक्षकों को सावधान करो। एक भी गाय का अपहरण न हो पाये।

सहस्रार्जुन : (धनुष-बाण संभालते हुए) परशुराम जानते हो ये सैनिक किसके हैं जो गायों का अपहरण कर रहे हैं ?

परशुराम : (परशु संभालकर) राजन् ! मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम नहीं जानते कि आज तुम्हारा किससे पाला पड़ा है। शलभ स्वयं ज्वाला में मिटकर प्राण देना चाहते हैं।

सहस्रार्जुन : अरे वाचाल ! संभल। (बाण धनुष पर चढ़ाता है।)

परशुराम : ले संभाल। (परशु का वार करते हैं।) (धनुष टूट कर गिरता है।)

सहस्रार्जुन : बच, अगर बच सके। (तलवार निकाल कर वार करना चाहता है। परशुराम वार को परशु पर झेल लेते हैं।)

परशुराम : (परशु का वार सहस्रार्जुन पर करते हैं। सहस्रार्जुन पृथ्वी पर गिरता है।) अन्त में परशु को रक्तरञ्जित होने से न बचा सका। अब शेष सैनिकों को देखूं।

बटुक : (आकर) भगवन् ! जय हो। गौएँ रक्षित हुईं। शत्रुओं की एक हजार भुजाएँ कट कर आश्रम में बिखरी पड़ी हैं।

परशुराम : आश्वस्त हुआ। किन्तु पूरी सतर्कता बरतने पर भी मैं रक्तपात न रोक सका—इसका दुःख है।

बटुक : भगवन्! दुःख न करें। आततायी का नाश दुःख का कारण न बने।

परशुराम : वत्स! सत्य है। मुझे पृथ्वी का लोभ नहीं, धन का लालच नहीं, फिर भी शस्त्र उठाने को विवश होना पड़ता है—यह कैसी विडम्बना है? केवल अन्याय मुझसे सहन नहीं होता।

बटुक : इसीलिये आपका यह परशु पवित्र है। इस पर सोने के लालच का खून नहीं है, अन्याय करते आततायी के शरीर का रक्त है।

परशुराम : पर मेरा मन इस रक्तपात से उद्विग्न है। मैंने यह पृथ्वी कश्यप को दान में दे दी है। अब मैं इस पृथ्वी पर न रहूँगा। अब दक्षिण में समुद्र से ही कुछ पृथ्वी माँग कर वहाँ रहूँगा तथा अपना शेष जीवन तपस्या में बिताऊँगा।

[बटुक तथा परशुराम जाते हैं।]

[तृतीय अङ्क समाप्त]

चतुर्थ अङ्क

प्रथम दृश्य

[हेमू के परिवार का दृश्य। एक कमरे में हेमू उसकी पत्नी तथा पिता राय पूरनमल बैठे हैं। हेमू ३० वर्ष के, पत्नी २५ वर्ष की तथा पिता ५५ वर्ष के हैं। वेशभूषा सबकी १६ वीं शताब्दी वाली है।]

हेमू : (पिता से)—पिताजी ! मेरा व्यापार काफी जम गया है। अब आप अपना पूरा समय भगवद्भक्ति में बितायें।

पूरनमल : तुम्हारा व्यापार ही नहीं जमा, अफगानों के बीच सिक्का भी जम गया है। लेकिन अफगानों का साथ देना कहां तक उचित है—यह मुझे नहीं मालूम। इस्लामशाह की तानाशाही तुमसे छिपी नहीं थी। फिर हूमायूँ के विरुद्ध इस्लामशाह का साथ देना कहाँ तक उचित था। अब भी मुहम्मद आदिल जिस निर्ममता से अपने भानजे फिरोज की हत्या करके सिंहासनारूढ़ हुआ है—इसे देखते उसका साथ देना मुझे अनुचित लगता है।

हेमू : पिताजी ! पहली बात तो यह समझें कि अफगानों का साथ मैं नहीं दे रहा, अफगान मेरा साथ दे रहे हैं। दूसरी बात यह कि अफगान भले ही निर्दोष न हों फिर भी वे भारतीय हैं। विदेशी मुग़लों के विरुद्ध यदि अफगान लड़ें तो उनका साथ देना एक भारतीय के नाते मेरा धर्म बनता है। मुहम्मद आदिल ने मुझे राजा विक्रमादित्य की उपाधि दी तो मैंने उसे स्वीकार किया क्योंकि यह दिल्ली सम्राट् बनने की पूर्वपीठिका बनेगी।

हेमू की पत्नी : (घूँघट में से ही)—दिल्ली सम्राट् का स्वप्न न देखें तो अच्छा है। आप वीर हैं फिर भी न जाने क्यों मेरा मन कहता है कि दिल्ली का सिंहासन हमारे लिए शुभ नहीं होगा ?

हेमू : हो सकता है तुम्हारी बात सच हो। लेकिन रण-शूर शुभ-अशुभ का विचार करके युद्ध थोड़े ही करते हैं, उनका उद्देश्य अपनी तलवार की धार का पानी सिद्ध करना है।

हेमू की पत्नी : तलवार की धार पर्याप्त नहीं, विचार भी चाहिए।

हेमू : तुमने मेरे किस काम में विचार-हीनता देखी ? २२ युद्धों में निरन्तर विजय केवल तलवार के बल पर प्राप्त नहीं की। रणनीति का विचार ही इन विजयों का मुख्य कारण है।

पूरनमल : (हेमू-पत्नी से)—बहू, तुम अन्दर जाओ। शाम का भोजन बनाने का समय हो गया। फिर युद्ध के बारे में हेमू जैसे वीर को उसकी पत्नी परामर्श दे—यह उचित भी नहीं लगता।

[सिर झुकाकर प्रणाम करती हुई हेमू-पत्नी जाती है।]

(हेमू से)—हेमू ! किसी भी व्यक्ति के पतन का कारण अहङ्कार होता है। कहीं तुममें अहङ्कार तो नहीं आ गया ?

हेमू : पिताजी ! मेरी किस बात में आपको अहङ्कार की गन्ध आयी ?

पूरनमल : पत्नी के सामने २२ विजयों की डींग हाँकना अहङ्कार नहीं तो क्या है ?

हेमू : २२ युद्धों में विजय तथ्य नहीं है क्या ?

पूरनमल : पर उस तथ्य के उल्लेख की यहाँ आवश्यकता क्या थी ? पत्नी सद्भाव से प्रेरित होकर कोई परामर्श दे और पति उस परामर्श पर विचार करने की जगह अपनी उपलब्धियाँ गिनवाने लगे —यह कहाँ की विवेकशीलता है ?

हेमू : गलती हुई। लेकिन आप आश्वस्त रह सकते हैं कि आपके पुत्र हेमू के मन में न अहङ्कार है न स्वार्थ। इस देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाना ही मेरा एकमात्र ध्येय है।

पूरनमल : यह ध्येय उदात्त है। परशुराम के वंशज आततायी के विरुद्ध लड़ें —यह कुल परम्परा के अनुकूल है। किन्तु.....

हेमू : किन्तु क्या पिताजी ? समय प्रतिकूल है—यही न आप कहना चाहते हैं ? मुगल बलवान् हैं। अफगान सरदार आपसी फूट वैमनस्य और महत्त्वाकांक्षा के कारण कुछ कर नहीं पायेंगे। राजपूत लम्बी लड़ाइयां लड़-लड़ कर मनोबल खो चुके हैं। फिर भी परमात्मा की कृपा और आपके आशीर्वाद से मैं प्राण देकर भी अपनी मातृभूमि को एक बार विदेशियों के चंगुल से मुक्त कराना ही चाहता हूँ।

पूरनमल : आशीर्वाद मेरा सदा तुम्हारे साथ है। पर राजनीति एक ऐसी दल-दल है जिसमें छल कपट तथा दोषारोपण सहज ही पनप जाते हैं। इनसे बचना।

हेमू : आपका आदेश सदा मेरा मार्ग-दर्शन करेगा।

[हेमूपत्नी प्रवेश करके]

भोजन तैयार है। हाथ पैर धोकर आप दोनों भोजन आरोगें।

पूरनमल : वत्स ! मैं आज से शाम का भोजन नहीं करूँगा। जब तक तुम अपने गुरुतर कार्य को पूरा नहीं कर लेते मैं एकाशन करूंगा।

हेमूपत्नी : भोजन न भी करें तो फल अवश्य ग्रहण करें। दूध तथा फल भिजवा देती हूँ।

पूरनमल : ठीक है। (हेमू से)—हेमू ! तुम भोजन करो मैं पूजागृह में पूजा कर रहा हूँ। (जाते हैं।)

हेमूपत्नी : पिताजी ने क्या समझाया ?

हेमू : यही कि अहङ्कार मत करना।

हेमूपत्नी : और लालच भी मत करना।

हेमू : बावा ! यहाँ तो सब उपदेश देने को हैं। हम तो दुनियादार हैं—अहङ्कार भी छोड़ दें, लालच भी छोड़ दें तो दुनियादारी कैसे चले ?

हेमूपत्नी : ऋषियों के वंश मे यह राजा कैसे पैदा हो गया ?

हेमू : राजा नहीं, सम्राट् कहो। राजा राज्य से थोड़ा ही होता है। रानी से राजा राजा बनता है। तुम रानी हो तो मैं स्वयं ही राजा बन गया।

हेमूपत्नी : और आज तक अपनी रानी को तुमने कभी नाम लेकर भी नहीं पुकारा। "आओ जी", "सुनती हो", "हाँ, जरा इधर आना"..... यह सब क्या है ?

हेमू : अच्छा ! आज से तुम्हें हेमवती कह कर पुकारूँगा।

हेमूपत्नी : ठीक, मेरे नाम पर भी अपनी मोहर लगा दी। सब जगह अपना अधिकार जमाने की प्रवृत्ति जो तुम्हारी है।

हेमू : अब केवल बातें ही बनाओगी या भोजन भी करवाओगी।

हेमूपत्नी : अभी पिताजी पूजा करके कुछ दूध फल ले लें तब ही भोजन करना उचित होगा। वे तुम्हारे लिये एक समय का भोजन छोड़ें और तुम उनके कुछ लिये बिना ही भोजन करना चाहते हो ?

हेमू : सुनो हेमवती ! अब तुम्हारे हाथ का भोजन दुर्लभ हो जायेगा। चारों ओर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। न जाने ऊँट किस करवट बैठे ? अपनी सुरक्षा का क्या प्रबन्ध तुमने किया है ?

हेमूपत्नी : जो प्रबन्ध किसी भी शूरवीर की स्त्री को करना चाहिये।

हेमू : यदि मेरा शरीर न रहा तो क्या सती हो जाओगी ?

हेमूपत्नी : सती क्यों होऊँगी ? परिस्थिति से सुलटना मुझे आता है।

हेमू : क्या शस्त्र चलाओगी ?

हेमूपत्नी : शस्त्र से भी अधिक प्रभावशाली शास्त्र है। जिसे धन का मोह न हो वह सर्वत्र सुरक्षित ही है।

[पूरनमल प्रवेश करके]

पूरनमल : मेरी पूजा हो गयी। तुम अभी तक यहीं बैठे हो। आओ, मैं भी अल्प फलाहार ले लूँ। तुम लोग भी भोजन करो। पर तुम लोग आजकल क्या भोजन करते हो ?

हेमूपत्नी : अभी तो मूँग की दाल पालक बना है।

पूरनमल : बेटी ! क्या मूँग की दाल पालक खाकर हेमू दिल्ली के सिंहासन की लड़ाई लड़ेगा ?

हेमूपत्नी : पिताजी ! शाम का खाना हल्का बनाया है। कल सवेरे उड़द की दाल, बाजरी की रोटी और सरसों का साग बनेगा।

हेमू : पिताजी ! भोजन की चिन्ता आप न करें। मेरी देख-रेख में बनी रिवाड़ी की बरफी और अलवर की गुँझियां पूरे भारत में प्रसिद्ध हैं। मुबारिज खाँ मुझे पाकशाला का अधीक्षक बनाने की सोच रहा था। मुगल सदा ये समझते रहे कि मैं सागपात खाने वाला क्या लड़ूँगा। पर हर बार उन्हें धोखा हुआ।

पूरनमल : और बहू मेरे लिये फल क्या है ?

हेमूपत्नी : सब फल हैं। पर आज एक ऐसा फल भी है जो रिवाड़ी में दुर्लभ है।

पूरनमल : वह क्या ?

हेमूपत्नी : डाँसरिये।

पूरनमल : अरे डाँसरिये का नाम सुनकर तो अलवर के अपने माछेरी गाँव की याद ताजा हो गयी।

हेमू : कभी माछेरी भी चलेंगे। पर अभी तो दिल्ली कूच करना है।

[सब जाते हैं।]

— पटाक्षेप —

द्वितीय दृश्य

[सुलतान मुहम्मद आदिल का दरबार। आदिल बैठा है।
मन्त्री और सेनापति भी बैठे हैं। हेमू का प्रवेश।]

आदिल : हेमू राय ! हम तुम्हारा तहेदिल से इस्तक़बाल करते हैं। तुम्हारा ही ज़िक्र हो रहा था।

हेमू : (कोर्निश करके) जहाँपनाह ने इस नाचीज़ को किस लिये याद फरमाया ?

आदिल : हेमू राय ! हमने आदिल का ख़िताब अपने लिये क़बूल किया और राजा विक्रमादित्य का ख़िताब तुम्हारे लिये तज्वीज़ किया है। मगर जानते हो लोग हमें क्या कहते हैं ? "अदली" यानी बेवक़ूफ़।

हेमू : (तलवार पर हाथ रखकर) कौन गुस्ताख़ है। हुक्म फ़रमायें, उसका सर क़लम करके आपके क़दमों में हाज़िर कर दूँ।

आदिल : कोई एक हो तो बतायें ? सभी कहते रहते हैं। तुम किस-किस का मुँह बन्द करोगे ?

हेमू : जहाँपनाह ! दुनिया क्या कहती है—इसकी फ़िक्र नहीं करनी चाहिये।

आदिल : सो तो है लेकिन ख़ुद तुमने भी तो हमारे फ़िरोज़ को क़त्ल करने के वाक़ये की नुक्ताचीनी की है।

हेमू : हेमू बीती बातों की चर्चा नहीं किया करता। फिर सियासत में सब चलता है।

आदिल : देखो हेमू ! हम जानते हैं कि फ़िरोज़ बेगुनाह था और उसको मार कर हमने अपनी बहन बीबी बाई को बेइन्तिहा तकलीफ़ पहुँचायी है लेकिन.....

हेमू : जहाँपनाह ! अपनी करनी का अंजाम सबको ज़रूर भोगना पड़ता है।

आदिल : तुम कहना क्या चाहते हो ?

हेमू : (बात बदल कर) सिर्फ़ इतना कि आप दिल्ली के तख्त पर बैठें।

आदिल : (खुश होकर) देखो हेमूराय। अब हमारी इज़्ज़त तुम्हारे हाथ है। अजमेर में बाग़ी जुनैदख़ाँ को जो तुमने क़रारी मात दी है, उससे हम निहायत खुश हैं।

हेमू : हज़ूर की इनायत है। लेकिन हमारे अपने अफ़ग़ान साथी ही हमारे ख़िलाफ़ हो गये—यह अच्छा नहीं हुआ।

आदिल : तुम्हें कुल्ली अख़्तियारात हैं। हम तुम्हें आज ही अपना वज़ीरे-आज़म मुक़र्रर करते हैं।

हेमू : इस ओहदे का हक़दार कोई अफ़ग़ान सरदार हो सकता है, नाचीज़ नहीं।

आदिल : कौन-सा अफ़ग़ान सरदार है जो इब्राहिम को नेस्तोनाबूद कर सके ?

हेमू : इब्राहिम को मैं संभाल लूँगा लेकिन वज़ीरे-आज़म के लिए आप किसी अफ़ग़ान के लिए अहकाम सादिर फ़रमायें हज़ूर।

आदिल : तुम अफ़ग़ान में और अपने में फ़र्क़ क्यों करते हो। एक ग़ैर मुल्की दुश्मन सर पर है। मुग़लों के ख़िलाफ़ हम सब हिन्दुस्तानियों को मिलकर लड़ना है।

हेमू : बजा इरशाद आलमपनाह, लेकिन—

आदिल : लेकिन कुछ नहीं । देखो हेमू ! एक बात समझ लो । मुझे चुनार के क़िले पर ही सब्र है । दिल्ली का क़िला ख़्वाह किसी को मिले, मुग़लों को न मिले—मेरी सिर्फ़ इतनी ख़्वाहिश है । अगर दिल्ली का क़िला तुम्हें मिले तो मैं समझूंगा कि हिन्दोस्ताँ का बादशाह आदिल ही है ।

हेमू : हज़ूर की ज़र्रःनवाज़ी है ।

आदिल : (पास रखी एक तलवार देते हुए) आज से हेमू हमारे वज़ीरे-आज़म हुए ।

हेमू : (तलवार लेकर चूमता है ।) जान रहते जहाँपनाह का बाल भी बाँका न होने दूँगा ।

आदिल : हेमू राय ! सबसे पहले दिल्ली की फ़िक्र करो । हुमायूँ का इन्तक़ाल हो चुका है । ऐसा न हो कि अकबर दिल्ली का तख़्त हथिया ले । अगर अकबर दिल्ली के तख़्त पर बैठ गया तो जान लो कि हिन्दोस्तान को मुग़लों का ग़ुलाम होने से कोई नहीं रोक सकेगा ।

हेमू : बजा इरशाद जहाँपनाह । अब एक दिन की देरी भी पासा पलट सकती है । हमारी फ़ौज कितनी होगी ?

आदिल : ५०,००० घुड़सवार, १००० हाथी, ५ तोपें तथा ५०० छोटी तोपें हैं ।

हेमू : इतनी फ़ौज दिल्ली के तख़्त पर क़ब्ज़ा करने के लिये काफ़ी है । अगर हुक्म हो तो कल सवेरे ही कूच कर दिया जाये ।

आदिल : इस का क़तई फ़ैसला वज़ीरे-आज़म का होगा । हम तो कामयाबी के लिए दुआगो हैं ।

— पटाक्षेप —

तृतीय दृश्य

[दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट् हेमूराय बैठे हैं । उनके साथ अलवर के हाजीख़ाँ तथा हेमू के भाई जुझार राव, भतीजे महीपाल तथा भानजे रमैया बैठे हैं ।]

हाजी खाँ : शहँनशाह विक्रमादित्य हेमूराय को दिल्ली का तख़्त मुबारक हो। ख़ुदा इक़बाल बुलन्द रखे।

हेमू : ख़ाँ साहब, अगर आप अलवर से ऐन मौक़े पर आकर दिल्ली में दुश्मन से भिड़ न जाते तो हेमूराय दिल्ली के तख़्त पर न होकर तख़्ते पर होता ।

हाजीखाँ : अफ़ग़ान दोस्त से दग़ा नहीं करता । ये कैसे मुम्किन है कि आपका पैग़ाम मिले और मैं न आऊँ ।

हेमू : सब अफ़ग़ान भी तो एक जैसे नहीं हैं । कुछ अफ़ग़ान कानाफूसी कर रहे हैं कि हम बादशाह बन बैठे हैं जबकि सुलतान मुहम्मद आदिल ने हमें सिर्फ़ बज़ीरे-आज़म मुक़र्रर किया था । ये लोग इस बात से वाक़िफ़ नहीं कि चलते वक़्त ख़ुद आदिल शाह ने फरमाया था कि वे चुनार में ही रहेंगे, दिल्ली हमें सँभालनी है ।

हाजी खाँ : ये आपसी फूट ही हम हिन्दोस्तानियों की हार की वजह बनती है । ख़ास बात यह नहीं हैं कि आज दिल्ली के तख़्त पर कौन शख़्स बैठा है, ख़ास बात यह है कि शेरशाह सूरी के बाद आज पहली बार दिल्ली के तख़्त पर एक हिन्दुस्तानी बैठा है, कोई ग़ैर-मुल्की नहीं ।

हेमू : ख़ाँ साहब, आप मेहरबानी करके यह बात फ़ौज के अफ़ग़ानों के ज़हन में बिठाइये। दिल्ली की

फ़त्ह आख़िरी फ़त्ह नहीं है। हिन्दोस्तान की क़िस्मत का फ़ैसला तो पानीपत में होगा। हमारी फ़ौज के हाथियों को संभालने वाले महावत सभी अफ़ग़ान हैं और वे किले के चारों तरफ़ मैदान में डेरा डाले पड़े हैं।

हाजी खाँ : मैं इस बात से वाक़िफ़ हूँ। मैं अफ़ग़ानों को समझाता हूँ। राजपूतों को आप संभालें। कुछ राजपूत आपको बनिया बताकर हुकूमत करने के लायक नहीं जानते।

हेमू : मैंने तिजारत ज़रूर की है पर बनियागिरी नहीं। मैं तो बिरहमन हूं लेकिन निक़ाह पढ़वाने वाला बिरहमन नहीं। मैं परशुराम की औलाद हूं जिसके हाथ का फरसा किसी ज़ालिम को कभी नहीं बख़्शता था, लेकिन किसी बेगुनाह के लहू से कभी नापाक भी नहीं होता था।

हाजी खाँ : अफ़ग़ान आपकी इस तवारीख़ से वाक़िफ़ हैं। हमने इस्लाम ज़रूर कबूल किया है लेकिन हमारी रगों में भी वही आर्याई ख़ून दौड़ता है जो आपकी रगों में है। सच तो यह है कि शक्लो-सूरत में अफ़ग़ान आप हिन्दुओं से ज़्यादा आर्य दिखते हैं। अच्छा अब इजाज़त दें, वक़्त बहुत कम है।

[जाता है।]

जुझार राव : भाई हेमू ! अगर हाजी खाँ जैसे अपने राष्ट्र पर गर्व करने वाले १०,००० अफ़ग़ान होते तो यह देश सदा स्वाधीन रहता।

हेमू : सदा स्वाधीन ही रहेगा भाई जुझार राव। बस एक अन्तिम धक्का देना और शेष है। पानीपत में मुग़ल सेना एकत्र हो रही है। उसका सामना करने की क्या योजना बनायी है आपने ?

जुझार राव : हमारी रणनीति का प्रमुख अङ्ग हाथी रहे हैं। युद्धकला के जानने वाले हाथियों की कमियाँ बतलाते रहे हैं लेकिन हमने अब तक हाथियों को इतना शिक्षित कर दिया है कि वे घुड़-सवार सेना से आगे ही रहते हैं।

महोपाल : महाराज ! चाचा जी ठीक कहते हैं। दिल्ली के युद्ध में मुग़लों की तरफ़ से बारह सेनापति थे जब कि अपनी ओर आप समेत केवल चार सेनापति थे फिर भी विजयश्री हमारे हाथ लगी। उसका मुख्य कारण आपकी व्यूहरचना की कुशलता थी।

रमैया : मामाजी ! आप स्वयं जो सारी सेना से अलग रह कर ३०० चुने हुए हाथियों के साथ आक्रमण के अवसर की प्रतीक्षा करते रहे, वह दिल्ली के युद्ध का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय था।

हेमू : रमैया ! जानते हो देश में अकाल पड़ने पर भी इन हाथियों को चावल, चीनी और मक्खन खिलाने की मेरी नीति की आलोचना होती रही लेकिन मैं जानता था कि ये हाथी ही हमारी ज़िन्दगी बचा सकते हैं। इसीलिये मैंने हाथियों को भी युद्ध में पहली बार कवच पहनाये। इस बार तो सुनते हैं मुग़लों ने भी हमारी नक़ल पर हाथियों के लिये कवच बनवाये हैं।

रमैया : बनवाये होंगे। पर हमारे हाथी गालिब जंग, गजभंवर, ज़ोर बनिया, फ़ौज मदार, काली बेग और हवाई का मुक़ाबला कौन कर सकता है।

हेमू : ये हाथी तो अद्वितीय हैं लेकिन हमारी कठिनाई यह है कि हमारे महावत सभी अफ़ग़ान हैं और उनकी स्वामिभक्ति सन्देहास्पद है।

महीपाल : हाथियों के महावत का काम हम स्वयं संभाल सकते हैं।

हेमू : यह नहीं हो सकता। एक तो अगर महावत का काम हम स्वयं संभालेंगे तो अफ़ग़ान यह समझेंगे कि हमने उन पर भरोसा नहीं किया दूसरे हमारी संख्या सीमित है। महावत का काम करने में हम लग गये तो शस्त्र कौन सँभालेगा ?

रमैया : महाराज ठीक कह रहे हैं। अब तो भगवान् परशुराम का ध्यान करके हमें इस विपरीत परिस्थिति में ही लड़ना होगा।

हेमू : कोई परिस्थिति अनुकूल नहीं होती। परिस्थिति बाहुबल से अनुकूल बनायी जाती है। पानीपत की लड़ाई की व्यूह रचना इस प्रकार होगी कि मेरी बाईं ओर की सेना का नेतृत्व तुम सँभालोगे तथा दाईं ओर की सेना का नेतृत्व शादी ख़ाँ काकर को सौंपा जायेगा। महीपाल गुप्तवेश में सेना के साथ रहेंगे ताकि ज़रूरत पड़ने पर शेष देश से सम्पर्क बना सकें।

हाजी ख़ाँ : (प्रवेश करके) जहाँपनाह ! फ़ौज की पूरी तैयारी है। सिर्फ़ आपके हुक्म का इन्तज़ार है।

हेमू : हाजी खां ! इस जँग में मेरी दाहिनी तरफ़ की फ़ौज की कमान आपको संभालनी है।

हाजी ख़ाँ : बन्दा हर हुक्म बजा लाने को हाज़िर है। हमारे हाथी जब दौड़ते हुए पहाड़ों की तरह दुश्मन के सिपाही और घोड़ों को उठा-उठा कर हवा में फेंकेंगे तो उनका सुरमा बना देंगे।

हेमू : हाजी ख़ाँ साहब ! लड़ाई हाथी नहीं इन्सान लड़ते हैं। आपने अफ़ग़ानों के दिल की बात का पता लगाया ?

हाजी ख़ाँ : अफ़ग़ान अपने दिल में साफ़ हैं। उन्हें मालूम है कि उनकी इज़्ज़त बादशाह हेमूराय के हाथों में ही महफ़ूज़ रह सकती है।

हेमू : अगर यह सही है तो फ़तह हुई ही समझिये। अब चलें। काफ़ी रात हुई। कल सवेरे ही फ़ौज की एक टुकड़ी को पानीपत की तरफ़ कूच करना है।

[सब जाते हैं।]

— पटाक्षेप —

चतुर्थ दृश्य

[एक टैन्ट के सामने बैराम ख़ाँ के साथ अकबर बैठा है। अकबर की उम्र अभी सिर्फ १४ साल की है। बैराम ख़ाँ अकबर का अध्यापक है और उसी की राय से अकबर सब राज-काज देखता है।]

अकबर : उस्ताद साहब ! हेमू बक्क़ाल को बुलवा लिया जाये।

बैराम ख़ाँ : ज़रूर जहाँपनाह।

[अकबर सङ्केत करता है। दो सिपाही हेमू को लेकर जाते हैं। हेमू की एक आँख पर सिर के पीछे तक मोटी पट्टी बंधी है जो खून से सनी है। उसके दोनों हाथों को भी कपड़े से जकड़ दिया गया है वह दर्द से बेहाल है।]

अकबर : तुम्हीं हेमू हो।

हेमू : लोग मुझे ही हेमू कहते हैं।

अकबर : अपना जुर्म क़बूल करते हो ?

हेमू : अपने मुल्क की हिफ़ाज़त के लिए लड़ना अगर जुर्म है तो मुझे क़बूल है।

अकबर : मुल्क की हिफ़ाज़त का बहाना मत करो। तख़्त का लालच कहो। अपने मालिक आदिल से दग़ा की—उसे छिपा क्यों रहे हो ?

हेमू : यह तो आदिल साहब से पूछा जाए कि मैंने दग़ा की या नहीं।

अकबर : आदिल से भी पूछेंगे। अभी तो तुमसे पूछ रहे हैं।

हेमू : मैंने किसी से कोई दग़ा नहीं की।

अकबर : तो यह किस जुर्म की सज़ा तुम्हें मिली है ?

हेमू : आपके वालिद हुमायूँ को किस जुर्म की सज़ा मिली थी जो वे सीढ़ियों से गिर कर इन्तकाल कर गए।

अकबर : कम्बख़्त ! लड़ाई में तीर लग कर बेहोश हो जाने को सिर्फ़ एक हादसा बताना चाहता है।

हेमू : तीर चलाने वाले ने कोई निशाना नहीं साधा था, न उसे मालूम था कि उसके तीर का निशाना हेमू बनेगा। इसे हादसा न कहें तो क्या कहें ?

अकबर : तुमने इस्लाम के ख़िलाफ़ काम किए हैं।

हेमू : इस मुल्क में बादशाह मज़हबी कामों में दख़ल नहीं देता।

अकबर : तुम बादशाह थे क्या ?

हेमू : था नहीं, हूँ। बादशाह ताउम्र बादशाह रहता है।

अकबर : और हम कौन हैं ?

हेमू : एक हमलावर। इस मुल्क में तुम एक हमलावर से ज्यादा कुछ नहीं हो।

बैराम खाँ : जहाँपनाह ! इस काफ़िर से बहसो-मुबाहिसा बेकार है। इसका नापाक सर अपने ख़ंजर से क़लम कर ग़ाज़ी बनें।

अकबर : मारने से पहले ज़रा इसका हौसला तो देखें।

हेमू : हौसला मेरा ही नहीं, मेरे सरदारों का भी देखना। इस मुल्क में न अफ़ग़ान तुम्हें चैन से रहने देंगे न राजपूत। मेरी नस्ल के ढूसर बिरहमन भी तुम्हारी नींद हराम कर रखेंगे। मेरा महावत डरकर धोक न देता तो हेमू भी यूँ यहाँ न होता। पानीपत के पानी में हेमू के बहादुर सिपाहियों ने आग पैदा कर दी—यह बात मेरे लिए कम फ़ख़्र की नहीं है।

अकबर : शिकस्त पर फ़ख़्र करना कोई तुमसे सीखे।

हेमू : और अपनी फ़ौज को कटने मरने के लिए मैदान जँग में भेज कर पाँच कोस दूर से जंग का तमाशा देखते रहना भी कोई तुमसे सीखे। मैदान जँग में आमने-सामने दो-दो हाथ किए होते तो पता चलता कि शिकस्त क्या है और फ़त्ह क्या है। इस मुल्क के सिपाही शिकस्त और फ़त्ह को बराबर समझते हैं। सवाल सिर्फ जवाँमर्दी और बुज़दिली का है। सो तुम और तुम्हारे ये उस्ताद बैराम खाँ अगर जवामर्द थे तो पानीपत के मैदान में हेमू की तलवार का पानी देखने आए होते।

बैराम खाँ : अब तो सिर्फ़ तुम्हें बादशाह अकबर की तलवार का पानी देखना है।

हेमू : ज़ख़्मी और बँधे हुए सिपाही को तलवार का पानी नहीं अपनी बुज़दिली दिखायी जाती है।

अकबर : हम बुज़दिल नहीं हैं। अपनी जान को छोड़कर जो माँगना चाहो माँग लो।

हेमू : मेरे वालिद ८० साल के बूढ़े हैं। उन्हें इबादत करने दी जाये—उसमें किसी क़िस्म का ख़लल न डाला जाये।

अकबर : इस्लाम के मुताबिक वे ख़ुदा की इबादत करना चाहें तो उन्हें कोई कुछ न कहेगा। क्यों बैराम खाँ साहब ?

बैराम खाँ : बजा फरमाते हैं।

हेमू : इबादत, इबादत है। उसमें हिन्दू मुसलमान बीच में कहाँ से आये ?

अकबर : यह फ़लसफ़ा इसी मुल्क में चल सकता है। अकबर तो दो ही चीजें जानता है—इस्लाम या मौत।

हेमू : ख़ैर, मौत का ख़ौफ़ ख़ुदा के बन्दों को नहीं होता। एक बात और। मेरी बेगम की इज़्ज़त को हाथ न लगाया जाये। वह रिवाड़ी में रहती है, हेमवती उसका नाम है। (व्याकुल हो जाता है।)

[पर्दे के पीछे से आवाज़ आती है—हेमू ! हेमवती की तरफ़ से चिन्ता न करना। वह बैजवाड़ा के उन पहाड़ों में भाग गयी है कि अकबर के फ़रिश्ते भी उसे नहीं ढूंढ सकते। मुग़ल सेनानायकों ने जब उसे बन्दी बनाने के लिये पीछा किया तो उसने हाथी से इतना सोना बखेरा कि मुगल सिपाही उस सोने को बटोरने में लग गये और इतने में वह हाथी पर भाग गयी। तुम्हें सूचना देने उसने मुझे भेजा है।]

हेमू : अरे यह तो महीपाल की आवाज़ है। (ज़ोर से) शाबास, महीपाल तुमने मरते हुए हेमू को यह सन्देश देकर जीवन दे दिया।

अकबर : पकड़ो इस बदमाश के बच्चे को। यह कौन महीपाल है जो हमारे दुश्मन को इस तरह की ख़बरें अब भी दे रहा है।

हेमू : अकबर ! हम इतनी कच्ची कौड़ी नहीं खेले हैं। महीपाल जिस हाथी पर सवार होकर यह खबर दे गया है वह हाथी करनाल से रिवाड़ी का सफ़र सिर्फ चार घण्टे में तय कर लेता है। तुम्हारा तेज़ से तेज़ घुड़सवार भी उस हाथी के पाँवों से उठती गर्द के अलावा कुछ न पा सकेगा।

अकबर : मैं एक-एक करके सबको निपट लूँगा। अभी उस्ताद बैराम खाँ इस काफ़िर के लिये मुनासिब सज़ा तज्वीज़ करें।

बैराम खाँ : अलावा इसके कि इसकी गर्दन जहाँपनाह ख़ुद अपनी तलवार से काटकर ग़ाज़ी बनें—और कोई रास्ता नहीं है।

अकबर : लकिन दुश्मन घायल है।

हेमू : बादशाह ! आप उस्ताद की बात ही मानें। घायल दुश्मन पर वार नहीं करना—यह इस मुल्क़ का रिवाज़ इस मुल्क़ के पानी के साथ आपके दिमाग़ में कैसे घुस गया ? (अपनी गर्दन आगे कर देता है। अकबर तलवार चलाने में झिझकता है।)

बैराम खाँ : जहाँपनाह ! यूँ झिझकना मुनासिब नहीं।

हेमू : बैराम खाँ ! मुझे मौत का अफ़सोस नहीं, अफ़सोस इस बात का है कि अकबर को एक टुच्चा उस्ताद मिला। पर याद रखना एक हेमू मरेगा तो हज़ार हेमू पैदा होंगे। तुम हमलावरों के ये नापाक इरादे कभी कामयाब न होंगे।

बैराम खाँ : (अपनी नंगी तलवार अकबर के हाथ में ज़बरदस्ती पकड़ा कर हेमू के सिर पर रखता है पर अकबर तलवार चलाता नहीं।) (हेमू को धक्का देकर एक तरफ़ ले जाते हुए) चल काले काफ़िर तेरा सर मैं ख़ुद अपने हाथों धड़ से अलग करता हूँ।

— पटाक्षेप —

[चतुर्थ अङ्क समाप्त]

पञ्चम अङ्क

प्रथम दृश्य

[चरणदासजी, अवस्था लगभग २०-२५ वर्ष के बीच। वेशभूषा मध्यकालीन सन्तों की]

[स्थान : शुकताल पर वटवृक्ष]

चरणदास :

गुरुदेव हमारे आवो जी ।
बहुत दिनों से लगो उमाहो आनन्द मङ्गल लावो जी
पलकन पन्थ बुहारूँ तेरो नैनन परि पग धारो जी
बाट तिहारी निशिदिन देखूँ हमरी ओर निहारो जी ।
(राग सोरठ)

[एक दिव्य प्रकाश वटवृक्ष के नीचे फैल जाता है उस प्रकाश में केवल लंगोट पहने शुकदेव वटवृक्ष के नीचे बनी वेदि पर पद्मासन में दिखाई देते हैं। चरणदास की ओर आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाते हैं।]

चरणदास : यह क्या दिवास्वप्न है ? डेहरे में जिन्होंने मेरी बालक अवस्था में मुझे दो पेड़े प्रसाद के रूप में दिये थे ये वे ही शुकदेव आज सम्मुख हैं।

शुकदेव : ठीक कह रहे हो। मैं ही शुकदेव हूँ। शिष्य सच्चे मन से याद करे और गुरु न आयें—यह सम्भव नहीं।

चरणदास : (साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए) गुरुदेव ! आज आपके दर्शन न होते तो जाने चरणदास बचता या न बचता। शुक-ताल पर इस आशा से आया था कि यहाँ आपने परीक्षित को भागवत सुनायी थी। यहाँ या तो आपका दर्शन हो जायेगा या फिर शरीर छूटे तो कम से कम गङ्गातट पर तो छूटे।

शुकदेव : वत्स ! जब साधक की अभीप्सा इतनी उत्कट होती है कि शरीर को छोड़ने की भी तैयारी हो जाये तब ही सिद्धि की प्राप्ति होती है।

चरणदास : सिद्धि हो न हो, गुरुकृपा बनी रही यह बहुत है।

शुकदेव : सिद्धि और गुरुकृपा दो अलग वस्तुयें नहीं हैं।

चरणदास : आपका दर्शन होता रहे, मुझे सिद्धि नहीं चाहिये।

शुकदेव : मुझे कहाँ देख रहे हो, मेरे शरीर को देख रहे हो। मेरा दर्शन तो आत्मदर्शन है और आत्मदर्शन ही परमात्मदर्शन है।

चरणदास : आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन इस कलिकाल में कहाँ ? जहाँ देखिये अनाचार का साम्राज्य है। ऐसे में साधना कैसे होगी ?

शुकदेव : आत्मा का अज्ञान ही समस्त अनर्थों का मूल है। आत्मदर्शन बिना कल्याण नहीं है, वत्स !

चरणदास : समाज सारा बिखर चुका है। भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त है। सब स्वार्थ के पीछे पागल हैं। शासन अपना कर्तव्य भूल चुका है। सन्त भी गद्दियों के पीछे लड़ने में लगे हैं। ऐसे में कौन किसे मार्ग दिखायेगा ?

शुकदेव : मार्ग दिखाया नहीं जाता, जहाँ प्रेम है वहां मार्ग स्वयं दिख जाता है।

चरणदास : योग के आठों अङ्गों की साधना करते एक युग बीत गया किन्तु हृदय तृप्त न हुआ।

शुकदेव : केवल नाक पकड़ कर सांस रोकना योग नहीं है। न मन को शून्य में ले जाना योग है। समाज-सेवा के बिना सब साधना श्मशान की साधना बन जाती है।

चरणदास : समाज सेवा तो एक नया परिवार बसाने जैसा है। साधक को एकान्त सेवन शोभा देता है, समाज सेवा नहीं।

शुकदेव : एकान्त सेवन साधना का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है किन्तु किसी भी साधना की चरम परिणति तो समाज सेवा में ही है।

चरणदास : यह तुच्छ प्राणी कौनसी समाज सेवा कर सकता है ?

शुकदेव : निराश समाज में आशा जगाओ। आततायी को प्रतिबोध दो। सेवा का आदर्श स्थापित करो। ऊँच-नीच का भेद भाव मिटाओ। यह समय व्यक्तिगत साधना के स्वार्थ में फँसने का नहीं। समष्टिगत साधना करनी होगी। सन्तों को राजाओं से दूर रहना चाहिये किन्तु राजनीति पर नैतिकता का अङ्कुश भी सन्त ही लगा सकते हैं।

चरणदास : अभी तो अपने पर ही अङ्कुश नहीं लग रहा। दूसरों पर क्या अङ्कुश लगाऊँगा गुरुदेव !

शुकदेव : अपने पर अङ्कुश लगाने के लिये अ-मन की स्थिति में जाना होगा। सिद्धियाँ तो तुम्हें पूर्वजन्मों की साधना से स्वतः प्राप्त हो जायेंगी।

चरणदास : सिद्धियाँ योग की चेरी हैं। चित्त की एकाग्रता से बचपन में मकतब में उस्ताद कादरबख्शजी को कुछ आगे तक का पाठ सुना दिया तो उन्होंने उसे चमत्कार माना।

शुकदेव : सभी चमत्कार चित्त की एकाग्रता के फल हैं। पर चित्त की एकाग्रता सम्प्रज्ञात समाधि तक ही ले जा सकती हैं। असम्प्रज्ञात समाधि के लिये चित्तवृत्तिनिरोध आवश्यक है।

चरणदास : चित्तवृत्ति का निरोध कैसे हो ?

शुकदेव : अजपा जप करो श्वास के अन्दर जाने के साथ "हं" की ध्वनि होती है, बाहर आने के साथ "सो" की ध्वनि। इसी ध्वनि को निरन्तर सुनते रहने से "सोहं" का भाव दृढ़ होता है। यही भाव अद्वैत की सिद्धि कर देता है। अद्वैत की सिद्धि के बिना हृदय की ग्रन्थियाँ छिन्न नहीं होती।

[शुकदेव तथा चरणदास पद्मासन में दो मिनट श्वास के आने-जाने के साथ "सोहं" के अजपा जप का अभ्यास करते हैं।]

चरणदास : गुरुदेव ! यह मन्त्र अद्भुत है। मेरे सारे संशय छिन्न भिन्न हो गये। आदेश दें।

शुकदेव : तुम्हारी दीर्घकालीन योगसाधना ने चित्त का मल और विक्षेप तो पहले ही दूर कर दिया

था, आज अज्ञान का आवरण भी दूर हो गया। अब तुम अखण्ड भक्ति का प्रचार करो।

चरणदास : आशीर्वाद दें कि भक्तिसागर में सदा आकण्ठ डूबा रहूँ।

[शुकदेव आशीर्वाद देते हैं। मञ्च पर शुकदेव पर पड़ने वाला प्रकाश मन्द होते-होते समाप्त हो जाता है। शुकदेव मानों अन्तर्धान हो गये। केवल चरणदास शेष रह जाते हैं।]

चरणदास : गये। गुरुदेव गये।

सतगुरु अक्षर मोहिं पढ़ायो
गुरु शुकदेव पढ़ायो अक्षर, अगम देश चटशाला।
चरणदास जब पण्डित हुये, धारि तिलक अरु माला

(राग रामकली)

[प्रथम दृश्य समाप्त]

द्वितीय दृश्य

[मोहम्मदशाह का दरबार दिल्ली में। बादशाह विलासी मुद्रा में सिंहासन पर बैठा है। नर्तकी नृत्य कर रही है। चषकों में सुरा पिलायी जा रही है। दरबारी पी रहे हैं। एक अमीर प्रवेश करता है।]

अमीर : (कोर्निश करके) बादशाह सलामत। एक ख़ास बात अर्ज़ करनी है।

मोहम्मदशाह : (व्यंग्य से) बेवक़ूफ ! ख़ास बात अर्ज़ करने का भी यही मौक़ा मिला।

अमीर : मौक़ा नहीं है। लेकिन बात ज़रूरी है।

मोहम्मदशाह : ज़रूरी बात बाद में। पहले एक जाम पियो। तुम्हारे होश ठिकाने नहीं हैं। (इशारा करता है।)

[गुलाम शराब का जाम पेश करता है।]

अमीर : हज़ूर। तन्हाई चाहिये।

मोहम्मदशाह : (न चाहते हुए) तख़्लिय:

अमीर : दिल्ली में एक फ़क़ीर है, उसने एक बहुत बुरी पेशीनगोई की है।

मोहम्मदशाह : और तुम एक फ़क़ीर की पेशीनगोई पर हमारे आराम में दख़ल देने की जुर्रत कर बैठे।

अमीर : वो फ़क़ीर नहीं, कामिल औलिया है।

मोहम्मदशाह : नाम ?

अमीर : स्वामी चरणदास।

मोहम्मदशाह : एक काफ़िर का नाम लेते वक़्त भी तुम स्वामी कह रहे हो ?

अमीर : फ़क़ीर हिन्दु मुसलमान नहीं होते। मज़हब के ये कटघरे हमारे और आपके लिए हैं फ़क़ीरों के लिये नहीं।

मोहम्मदशाह : ऐसे फ़क़ीर तो दिन में दस आते हैं। तुम किस मुग़ालते में आ गए।

अमीर : शहनशाह ! मुग़ालता मुझे नहीं आपको है। उस फ़क़ीर ने पेशीनगाई की है कि आज से छह माह बाद एक ईरानी सरदार, नादिरशाह दिल्ली पर हमला करके, इस शहर को तहस-नहस कर देगा।

मोहम्मदशाह : ये फ़क़ीर इसी तरह की बातों से ख़्वामख़्वाह ख़ौफ़ फैलाया करते हैं।

अमीर : ख़ौफ़ फैलाना बादशाहों का काम है, फ़क़ीरों का नहीं।

मोहम्मदशाह : तुम पर तो कुछ ज़्यादा ही रंगत चढ़ गयी है। ख़ैर ! फ़क़ीर जो भी पेशीनगोई कर रहा है क्या उसे तहरीरी तौर पर हमारी ख़िदमत में पेश कर सकते हो ?

अमीर : लिखवाकर ही लाया हूँ हुज़ूर। (पेश करता है।)

मोहम्मदशाह : (पढ़ते हुए)

ईरानी एक छत्तरधारी। आवत हिन्दुस्तान विचारी।
हार मान है मोहम्मदशाह। मिले वा सों दिल्ली पति नाहा।
नादिरशाह पतह पा धावे। याही सूँ वह दिल्ली आवे।
शहर माँहि तहसील लगावैं। सवा पहर कतलाम रहावैं।
फागुण सुदि दशमी को आवे। किले माँहि दाखिल हो जावे॥
वैशाख सुदि आढें के तांई। फेर शाह ईरान को जाहि॥

अमीर : हुज़ूर ! तारीख़ें तक दे दी हैं।

मोहम्मदशाह : कोई कुछ भी तारीख़ दे इससे क्या ? ऐसी अफ़वाह उड़ाने के जुर्म में इस फ़क़ीर को अभी कुत्तों से नुचवा देता लेकिन मैं चाहता हूँ कि इसे सज़ा तब दी जाये जब इसका जुर्म पूरी तरह साबित हो जाये यानी इस तारीख़ पर जब कुछ भी न हो और यह साबित हो जाये कि यह फ़क़ीर सरासर झूठा, मक्कार और दग़ाबाज़ है। यह तहरीर यहीं रहने दी जाये।

[अमीर जाता है।]

तृतीय दृश्य

[दरबार में नादिरशाह ऊँचे आसन पर बैठा है।
मोहम्मदशाह नीचे अमीरों के साथ बैठा है।]

मोहम्मदशाह : आप हिन्दोस्तान से बहुत-सा माल ले जा रहे हैं लेकिन यहां एक बेशक़ीमती चीज़ है जो कहीं नहीं है।

नादिरशाह : अब आपको लग रहा है कि जब सब कुछ छिन ही रहा है तो एक आध चीज़ रख कर भी क्या करेंगे। ठीक है। बेशक़ीमती चीज़ हाज़िर की जाये।

मोहम्मदशाह : (जेब से निकालकर चरणदासजी की लिखित भविष्यवाणी नादिरशाह को देता है।) —हाजिर है।

नादिरशाह : यह क्या है ?

मोहम्मदशाह : पिछले छह माह में जो हुआ उसकी पेशीनगोई।

नादिरशाह : किसने की ?

मोहम्मदशाह : एक फ़क़ीर ने।

नादिरशाह : उस फ़क़ीर को हाज़िर किया जाये।

मोहम्मदशाह : फ़क़ीर किसी बादशाह की ख़िदमत में नहीं आते। उनका बादशाह सिर्फ़ ख़ुदा होता है।

नादिरशाह : नादिरशाह हुक्म अदूली का आदी नहीं है। फ़क़ीर तो क्या, फ़क़ीर का ख़ुदा भी हाज़िर होगा। फ़क़ीर का नाम बताया जाये।

मोहम्मदशाह : मुझ से यह न होगा।

[चरणदास प्रवेश करते हैं। मोहम्मदशाह कोर्निश करते हैं। नादिरशाह अकड़ा बैठा रहता है।]

नादिरशाह : यही वो फ़क़ीर है शायद। बहुत मक्कार है। यहीं कहीं छिपा था। धमकी सुनी तो ख़ुद ही आ गया।

चरणदास : *हिन्दु तुर्क सभी इकसारे। चस्म मारफत खोल निहारे।*
हमको भी दिल में यों आई। देखें नादिरशाह को जाई॥

नादिरशाह : दरवेश ! मोहम्मदशाह से खूब फ़रेब किया। हमें फ़रेब नहीं दे सकोगे। करामाती हो तो हमें करामात दिखाओ।

चरणदास : करामात तो जादूगर दिखलाते फिरते हैं। फ़क़ीर से कुछ और माँगो।

नादिरशाह : नादिरशाह और माँगे ? माँगना हो तो तुम माँगना। लेकिन करामात दिखाये बिना जाने न देंगे।

[चरणदास जी नादिरशाह की आँखों में आँखे डालकर त्राटक करते हैं। नादिरशाह सिर पकड़ लेता है।]

नादिरशाह : ओह ! सिर फट जाएगा। ये दर्द अचानक कैसे हुआ।.....फ़क़ीर माफ़ कर। दर्द वापिस ले। तोबा। रहम..... रहम..... रहम की भीख माँगता हूँ।

चरणदास : क़त्ले-आम कराने वाला रहम की दुहाई दे रहा है ? रहम किसे कहते हैं—यह तुझे भी मालूम है क्या ?

नादिरशाह : (पैरों में गिरकर) आज से सब जुल्म बन्द। क़सम पाक परवरदिगार की। दरवेश साहब। अगर यह अज़ाब वापिस न लिया तो लहज़ा भर भी ज़िन्दा न रह पाऊँगा।

चरणदास : एक हफ्ते का वक़्त देता हूँ। यह मुल्क छोड़कर जाना होगा।

नादिरशाह : जो हुक्म ! अभी चला जाऊँगा। दर्द वापिस ले लें। मर जाऊँगा हुजूर।

चरणदास : *जाति खुदा की जानियो तास्सुव कीजो दूर।*
हिन्दू हो या तुर्क हो, जान खुदा का नूर॥

नादिरशाह : *हिन्दु तुर्क अब एक निहारे।*
ये सब मुरशिद करम तुम्हारे॥

चरणदास : (नादिरशाह के सिर पर हाथ रखते हैं। नादिरशाह को एकदम चैन मिल जाता है।) लो निजात पाओ।

नादिरशाह : औलिया बाबा। दूसरी जिन्दगी दे दी है। आपका करम कभी न भूलूँगा।

चरणदास : "नादिर" का मतलब समझते हो।

नादिरशाह : मुझे इस मुल्क के आलिमों ने बताया है कि ईरान में हम जिसे "नादिर" कहते हैं उसे इस मुल्क में अदीतीय कहते हैं।

चरणदास : ठीक। अद्वितीय यानी जिसका दूसरा नहीं है। जो है तुम्हारा अपना ही रूप है; पराया कोई नहीं। नादिरशाह को अपने नाम का यह मतलब याद रहेगा ?

नादिरशाह : ताउम्र याद रखूँगा—औलिया बाबा।

चरणदास : हम चलें।

नादिरशाह : ऐसे नहीं हुजूर। पालकी हाज़िर हो (ताली बजाता है। कहार पालकी लाते हैं। चरणदासजी को पालकी में बैठाता है। फिर गले का क़ीमती हार उनके कदमों में रखता है।) ये मेरी तरफ़ से नज्र है।

चरणदास : (हार लौटाकर) गरीबों में बांट दो। ये दौलत हमारे काम नहीं आती। हमारी दौलत कुछ और है।

[पालकी चलती है तो नादिरशाह और मोहम्मदशाह भी उसमें कन्धा लगाते हैं।]

— पटाक्षेप —

चतुर्थ दृश्य

[चरणदासजी अपने अन्तरङ्ग शिष्यों के साथ अपनी गद्दी पर बैठे हैं।]

चरणदास : कल जो राजदरबार में हुआ वह ठीक नहीं हुआ। सन्तों को कोई करामात नहीं दिखलानी चाहिये।

जोगजीत : (चरणदासजी का एक शिष्य)—आपने कोई करामात नहीं दिखायी।

चरणदास : और जो नादिरशाह के सिर में भयानक दर्द हुआ वह ?

जोगजीत : वह करामात न थी। मनोविज्ञान का एक छोटा-सा प्रयोग था। दुराचारी, सदाचारी का तेज़ बर्दाश्त नहीं कर सका।

चरणदास : सभी करामात मनोविज्ञान ही है। लेकिन नादिरशाह के अन्यायों का निराकरण

करने के लिये यह आवश्यक था। लोक-कल्याण के लिये योग का प्रयोग कभी-कभी आवश्यक हो जाता है। पर ऐसे प्रयोग के बाद उसका प्रायश्चित्त भी जरूरी है। मुझे प्रायश्चित्त करना होगा।

जोगजीत : कैसा प्रायश्चित्त ? जहाँ कर्तृत्व का अहङ्कार हो वहाँ प्रायश्चित्त होता है। ज्ञानी के लिये कैसा प्रायश्चित्त ?

चरणदास : धर्म मर्यादा सब के लिये एक जैसी है, चाहे ज्ञानी हो चाहे अज्ञानी।

जोगजीत : पर आप क्या प्रायश्चित्त करेंगे ? आपका शरीर तो पहले ही योगसाधना से सूख गया है।

चरणदास : सुखाना अहङ्कार को है, शरीर को नहीं।

जोगजीत : तब प्रायश्चित्त क्या करेंगे ?

चरणदास : नाई के वेश में एक वर्ष तक गुप्त रह कर आने जाने वाले यात्रियों के पाँवों की तेल-मालिश करूँगा। इससे सेवा भी होगी और अहङ्कार भी मिटेगा।

सहजोबाई : (चरणदास की एक शिष्या)—गुरुदेव ! नाई तो शूद्र होता है। आप भृगुवंशी होकर शूद्रवेश में रहेंगे क्या ?

चरणदास : सहजो ! भूल करती हो।

चारि वरन सूँ हरिजन ऊँचे।
भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन कु उज्जल मन के सूचे।
जो न पतीजै साखि बताऊँ सबरी के जूँठे फल खाये।
बहुत ऋषीसर हूँवाई रहते तिनके घर रघुपति नहीं आये।

सहजोबाई : सेवा यहाँ गद्दी पर रहते हुए भी तो की जा सकती है ?

चरणदास : जब-जब मेरी पालकी में मोहम्मदशाह और नादिरशाह ने कन्धा लगा दिया तो क्या दिल्ली में चरणदास के रूप में मेरी सेवा कोई स्वीकार करेगा ?

सहजोबाई : तो क्या दिल्ली भी छोड़ देंगे ?

चरणदास : हाँ, मैं शाहदरे में रहूँगा। लेकिन यह बात किसी को पता न चले। वरना मेरा प्रायश्चित्त अधूरा रह जायेगा।

सहजोबाई : हम भी साथ चलेंगे।

चरणदास : बच्चों वाली बात न करो। शिष्यों के दल-बल सहित क्या मैं छिप कर रह सकूँगा ?

जोगजीत : सहजोबाई ! हठ छोड़नी पड़ेगी। योगी जो ठान लेता है सो करता है। एक वर्ष विरह में गुज़ारना ही होगा।

सहजोबाई : मेरी सारी आयु विरह में गुजर गई। प्रियतम की झलक कहाँ मिली ? अब जो एक आशा गुरुचरणों की थी वह भी छूट रही है।

चरणदास : सहजोबाई ! अपना मार्ग स्वयं प्रकाशित करो। भगवान् के विरह की वेदना ही भगवान् के मिलने का मार्ग बन जाती है।

[सहजोबाई चरणों में नतमस्तक होती है।]

जोगजीत : गुरुदेव ! मैं आपका जीवन-चरित लिख रहा हूँ—श्री लीलासागर। उसमें इस गुप्त-वास का उल्लेख कैसे करूँगा ?

चरणदास : इस घटना का उल्लेख कर सकते हो किन्तु उस जीवन-चरित को तुम मेरे शरीर छोड़ने पर ही प्रकाशित कर सकोगे।

जोगजीत : जो आज्ञा।

चरणदास : अब तुम लोग विश्राम करो। कल सवेरे तुम मुझे यहाँ न पाओगे। जो लोग यहाँ आयें उन्हें यही कहना है कि चरणदासजी एकान्त योग साधना के लिये कहीं चले गये।

[एक ओर चरणदासजी जाते हैं दूसरी ओर उदास मन से शिष्य-शिष्यायें।]

— *पटाक्षेप* —

पञ्चम दृश्य

[नाई के वेश में चरणदासजी एक धर्मशाला में यात्रियों के पैरों में तेल मालिश कर रहे हैं।]

चरणदास : (ऊँचे स्वर में) तेल मालिश करवा लो।

एक यात्री : कितने पैसे लोगे ?

चरणदास : जितने मन आये दे दीजिये।

यात्री : ठीक है।

[चरणदास पाँव पर तेल लगाकर मालिश करते हैं।]

यात्री : लो ! (एक रुपये का सिक्का देता है।)

चरणदास : भगवान् आपको खुश रखे। (सिक्का ले लेते हैं फिर उस सिक्के को कुछ दूर जाकर एक गरीब भिखारी को दे देते हैं।)

यात्री : (दूसरे यात्री से) —अजीब नाई है। यहाँ से मेरी मालिश कर पैसा लिया और उस पैसे को भिखारी को दे दिया।

दूसरा यात्री : मैं इस धर्मशाला में तीन दिन से यही देख रहा हूँ। यह नाई मालिश कर काफी पैसा कमाता है पर अपने पास नहीं रखता, किसी न किसी जरूरतमन्द को दे देता है। बड़ी फक्कड़ तबियत का चम्पी मालिश करने वाला है।

[इसी बीच एक बूढ़ा अपने पाँव पकड़े आता है। उसके पांव दुःख रहे हैं। चरणदास उसके पास जाते हैं।]

चरणदास : बाबा पाँव बहुत दुःख रहे हैं क्या ?

बूढ़ा : हाँ भाई, २० कोस आज एक दिन में चला। लड़का बीमार है सो जल्दी आया हूँ। अभी कुछ सुस्ता कर दिल्ली चल दूँगा।

चरणदास : तेल मसलवा लो। आराम मिलेगा।

बूढ़ा : तेल मसलवाने का पैसा होता तो, इस बुढ़ापे में क्या यूँ पैदल भागता ? सवारी न कर लेता ?

चरणदास : पैसे की बात किसने की है ?

बूढ़ा : तो क्या मुफ्त मालिश करवा लूँ ?

चरणदास : मैं तैयार हूँ तो आपको क्या एतराज है ?

बूढ़ा : अपना परलोक बिगाड़ना है क्या मुफ्त सेवा लेकर ?

चरणदास : सेवा की कीमत पैसा थोड़े ही है। आशीर्वाद दे देना।

बूढ़ा : आशीर्वाद तो सन्त-महात्मा देते हैं। मैं तो एक गृहस्थ हूँ।

चरणदास : गृहस्थ भी सन्त महात्मा से कम नहीं होते, अगर उनमें कर्तव्य-बोध हो ता।

बूढ़ा : भैया, तेरी तो बातों से ही मेरी थकावट दूर हो गयी। अब चलूँगा।

चरणदास : पर बाबा, मालिश तो करवानी होगी। (बूढ़ा पाँव छुड़ाता है पर चरणदास मालिश कर ही देते हैं। बूढ़ा चला जाता है। इसी बीच एक यात्री आता है। उसका लौटा खो गया है।)

यात्री : मेरा लोटा खो गया। किसी ने देखा क्या ? अभी नया खरीदा था। (चरणदास को बाँह से पकड़कर)—तू कौन है ?

चरणदास : चम्पी मालिश करने वाला हूँ। मालिश करवानी है क्या ?

यात्री : मालिश के चाचा कहीं के। चोर ! हो न हो मेरा लोटा तूने ही चुराया है। शक्ल से ही चोर लगता है। मालिश करने वाले दिन भर में बीस-पच्चीस रुपये तक कमाकर अमीर हो गये। तेरे पास तो बीस पैसे भी नहीं नजर आते। चल मेरा लोटा दे।

चरणदास : आपका लोटा तो मेरा साथी ले गया। वह लोटा अब कहाँ से लाऊँ ? बाजार से दूसरा खरीदवा देता हूँ।

यात्री : अबे ! चोर कहीं के। लोटा नदारद भी करवा दिया। न जाने कितने यात्रियों को तूने इसी तरह ठगा होगा। कैसा कलिकाल आ गया ?

चरणदास : बाजार चलें दूसरा लोटा जितने का मिले, दिलवा देता हूँ।

यात्री : दिलवा क्या देता है ? पूरे डेढ़ रुपये का था।

चरणदास : चलिये बाजार से डेढ़ रुपये का दूसरा लोटा दिलवा दूँ।

यात्री : चल।

[चलते हैं। रास्ते में वही बूढ़ा मिल जाता है जिसकी मालिश मुफ्त चरणदास ने की थी।]

बूढ़ा : भाई मालिश वाले किधर चले ?

[चरणदास जवाब नहीं देते।]

यात्री : (बूढ़े से) आप इस चोर को जानते हैं ?

बूढ़ा : चोर ? अरे यह तो महात्मा है पूरा। नाई के वेश में महात्मा है।

[इतने में जोगजीत प्रवेश करता है।]

जोगजीत : (चरणस्पर्श कर) गुरुजी आप तो कहते थे कि आप गुप्त रहेंगे। किन्तु यह बूढ़ा तो आपका रहस्य जानता है।

चरणदास : (अचकचाकर)—अरे जोगजीत तुम कैसे ?

जोगजीत : महाराज एक वर्ष पूरा हो गया। आपका गुप्तवास का काल पूरा हो गया सो आपको लिवा लाने के लिये आया हूँ।

यात्री : (जोगजीत से) कैसा गुप्तवास ? क्या आप इस नाई को जानते हैं ?

जोगजीत : ये नाई नहीं महात्मा चरणदास हैं।

यात्री : (पश्चात्ताप की मुद्रा में चरणदास के पाँव पर गिरते हुए) महात्मन् ! मेरे से बहुत बड़ा पाप हो गया जो आप पर चोरी का आरोप लगाया।

चरणदास : (यात्री को उठाते हुए) तुमने पाप नहीं किया तुमने तो मेरा प्रायश्चित्त पूरा किया।

यात्री : महात्माओं के चरित्र का रहस्य समझना सचमुच कठिन है।

[प्रणाम करता है। शेष लोग भी प्रणाम करते हैं।]

—पटाक्षेप—

[पञ्चम अङ्क समाप्त]

[भृगुवंश नाटक समाप्त]

स्रोत सन्दर्भ

पृष्ठ	पङ्क्ति	सन्दर्भ
१	५-६	ऋग्वेद १०.९.१२
१	७-८	महाभारत आदिपर्व, ६०.४०
१	१६-१७	महाभारत आदिपर्व ६०.४ इत्यादि
१	२०-२१	गीता १०.२५
२	१७-१९	ऋग्वेद १.१४३.४
२	२७-२८	ऋग्वेद १.१.१
३	२०-२१	मनुस्मृति २.१२
४	२२ से दी कविता	भृगुकुलदीपिका पृ० १६-२४
५	२४	यजुर्वेद ४.१.६.१५
११	११	ऋग्वेद ४ ३३.११
११	१४-१५	ऐतरेय ब्राह्मण ७.१५.४
२८	११-१३	महाभारत, उद्योग पर्व, १७९.३
४२	६-९	भक्तिसागर पृ० ३७८
४४	७-९	भक्तिसागर पृ० ४९७
४५	१४-१९	लीलासागर पृ० १४१
४६	१७-१८	लीलासागर पृ० १४९
४७	२-३	लीलासागर पृ० १५७
४७	४-५	लीलासागर पृ० १५७
४८	१५-१८	भक्तिसागर पृ० ३८९-३९०
४८	२३ से आगे	लीलासागर पृ० १६१ के आधार पर

नाटककार का वंश-वृक्ष [सन् १८७४ की मूल फ़ारसी प्रतिलिपि के आधार पर]

बेरोज (जिला अलवर, राजस्थान) निवासी भृगुवंशी सर्वश्री मूलचन्द (इन्होंने बेरोज ग्राम के बाहर मूलाहेड़ी गाँव बसाया)

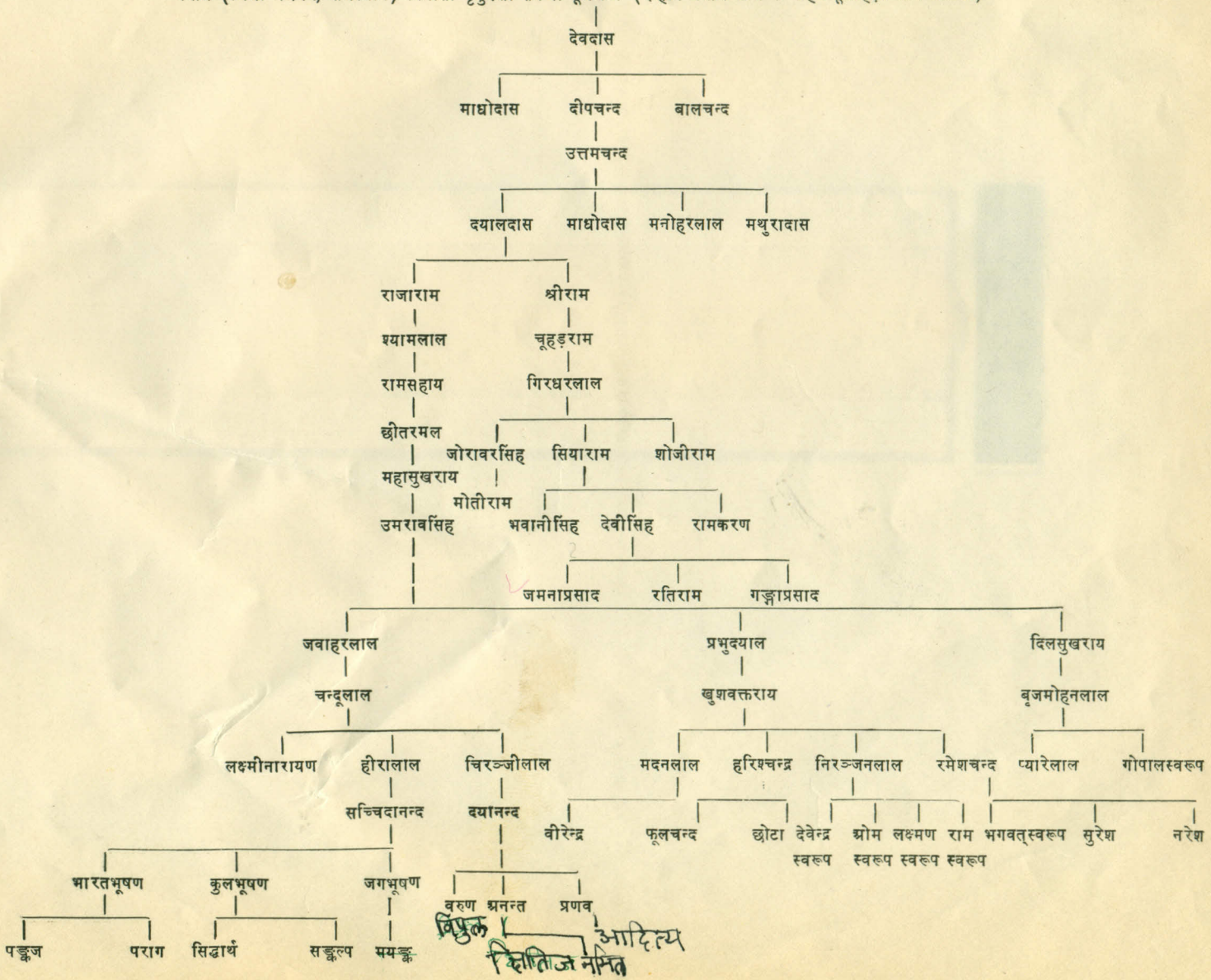

एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रोफेसर दयानन्द भार्गव कृत 'भृगुवंश' नाटक हिन्दी में एक अभिनव नाट्य प्रयोग है। इस नाटक में न तो कोई एकसूत्र कथानक है, न कोई एक नायक। नायक पांच हैं—भृगु, च्यवन, परशुराम, हेमू और चरणदास। इनमें से प्रत्येक को केन्द्र में रखकर एक-एक अङ्क का विधान किया गया है। एक तरह से प्रत्येक अङ्क अपने आप में पूर्ण है, फिर भी सभी अङ्कों के बीच एक अन्तर्निहित एकसूत्रता है; इस विच्छिन्न-प्रवाह में भी एक अद्भुत प्रभान्विति है। प्रबन्ध काव्य के क्षेत्र में विख्यात 'रघुवंश' के वज़न पर नाटक की विधा में 'भृगुवंश' की रचना निश्चय ही एक चुनौती-भरा प्रयास है। इस प्रयोग-विज्ञान की सफलता का वास्तविक निर्णय तो मञ्च-प्रस्तुति पर ही हो सकता है, पर पाठ-प्रक्रिया के प्रथम स्तर पर भी यह नाटक अविस्मरणीय प्रभाव उत्पन्न करता है।

'भृगुवंश' केवल प्रोफेसर भार्गव की 'अपनी पहचान की खोज'' नहीं, बल्कि हम सबके लिए अपनी परम्परा की नई पहचान है। यह नई पहचान है परम्परावाद से भिन्न विरोध और असहमति की दूसरी परम्परा का ओजस्वी स्वर। इस विरोध के आदि पुरुष भृगु हैं और उनकी 'भृगुसंहिता' जो अब 'मनुस्मृति' नाम से विख्यात है, इस परम्परा का आकर ग्रन्थ है। इस नाटक से संभवतः पहली बार यह बात उभर कर सामने आती है कि 'अन्तरात्मा की आवाज़' को भी मनुस्मृति के अन्तर्गत धर्म के चार लक्षणों में से एक माना गया है। इसी प्रकार मानव की महिमा का जैसा ओजस्वी स्वर भृगु के मुख से सुनाई पड़ता है, वह अश्रुतपूर्व है। भृगु कहते हैं : "केवल वही मनुष्य देवत्व की कामना करते हैं जिन्हें मनुष्यत्व की गुरुता का आभास नहीं है। मनुष्यत्व की गुरुता संवेदनशीलता में निहित है। मानव होने का अधिकार उन सबको है जो प्रेम करना जानते हों।"

महर्षि च्यवन भृगुवंश के दूसरे तेजस्वी पुरुष हैं जिन्होंने अश्विनीकुमार को सोमपान का अधिकार दिलाने के लिए स्वयं देवराज इन्द्र से लोहा लिया और इन्द्र के अहङ्कार को चूरकर अश्विनीकुमार को सोम ग्रहण कराया। इसी अङ्क में च्यवन की यह गौरवमयी घोषणा है : "भृगुवंशी गलत परम्पराओं को तोड़ने में गर्व अनुभव करते रहे हैं। जो कभी नहीं हुआ वह आज भी नहीं होगा—यह तर्क नहीं है। तर्क तो यह है कि जो कभी नहीं हुआ वह यदि उचित है तो उसे हम आज अवश्य करेंगे। इसी प्रकार तो मानव जाति का विकास हुआ है।"

भार्गवों में सबसे प्रतापी परशुराम हैं जिन्हें भार्गवजी ने बहुत कुछ नए व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया है। परशुराम की सामान्य प्रतिमा एक क्षत्रियद्रोही परम क्रोधी ब्राह्मण की है। किन्तु 'भृगुवंश' के परशुराम 'विद्या ददाति विनयम्' के विश्वासी और शिष्टाचार निभाने वाले हैं। वे आक्रान्ता सहस्रार्जुन को भी मधुपर्क अर्पित करने के लिए प्रस्तुत हैं। निश्चय ही वे अन्त में सहस्रार्जुन के वध के लिए विवश होते हैं किन्तु उन्हें इसका पश्चात्ताप होता है और प्रायश्चित्त स्वरूप वे समस्त पृथ्वी काश्यप को दान में देकर शेष जीवन तपस्या में व्यतीत करने के लिए निकल पड़ते हैं। सहस्रार्जुन का वध भी करते हैं तो इसलिए कि वह अनाचारी और स्वेच्छाचारी है। परशुराम में मानव-प्रेम इतना प्रबल है कि दिव्यास्त्र रखते हुए भी उनके प्रयोग का निषेध करते हैं क्योंकि उनसे

मानवता के समूल विनाश का ख़तरा है। भार्गवजी के "परशुराम के लिए पृथ्वी ही रथ है, वेद ही अश्व हैं, वायु ही सारथि है तथा सरस्वती ही कवच है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि परशुराम का यह दिव्य रथ प्रोफेसर दयानन्द भार्गव की सर्जनात्मक कल्पना की अनुपम सृष्टि है।

चतुर्थ अङ्क में नाटक पौराणिक युग की सीमा पार कर ज्ञात इतिहास में प्रवेश करता है जिसका नायक इतिहास-प्रसिद्ध हेमू बक्काल है जिसे प्रोफेसर दयानन्द भार्गव ने एक भार्गव के रूप में प्रस्तुत किया है। एक साधारण कुल के व्यक्ति का भारत के सम्राट् के पद तक पहुँच जाना हेमू के चरित्र का ऐसा पहलू है जिसने लेखक को उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया। लेखक की दृष्टि में यह पुरुषार्थ की महिमा है। इसके साथ ही हेमू एक ऐसे देशभक्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसने देश रक्षा के लिए अकबर से युद्ध किया। यह दूसरी बात है कि वह अप्रतिम रणकौशल के बावजूद अन्त में हार गया, किन्तु अपनी हार में भी उसने स्वाभिमान की रक्षा की। भृगुवंश का हेमू एक 'ट्रेजिक हीरो' है जिसके कारण नाटक को नया आयाम प्राप्त होता है।

पञ्चम और अन्तिम अङ्क के नायक सन्त चरणदास हैं जो एक ओर अपने योग बल से नादिरशाह के दर्प का दलन करते हैं तो दूसरी ओर नाई बनकर धर्मशाला के यात्रियों के पैरों में तेल मालिश भी करते हैं। चरणदास के चरित्र के माध्यम से भार्गवजी ने यह जीवन मूल्य प्रतिष्ठित करना चाहा है कि समाज सेवा ही सच्ची साधना है। "सन्तों को राजाओं से दूर रहना चाहिए किन्तु राजनीति पर नैतिकता का अङ्कुश भी सन्त ही लगा सकते हैं।"

कुल मिलाकर 'भृगुवंश' मानव के पुरुषार्थ की ऐसी उदात्त गाथा है जो आदि से अन्त तक अग्नि से तेजोदीप्त है। संवाद एकदम चुस्त और सन्दर्भोपयुक्त हैं; यत्र-तत्र वाग्विदग्धता की भी छटा है। आरम्भ और अन्त में गेय गीतों की योजना से नाटक और भी सरस बन पड़ा है। मुझे यह कहने में तनिक भी सङ्कोच नहीं कि यह नाट्य कृति आज के लिए सर्वथा प्रासङ्गिक और प्रेरणाप्रद है। प्रोफेसर दयानन्द भार्गव ऐसी कृति की रचना के लिए हमारी बधाई के पात्र हैं।

नई दिल्ली
२४ अक्टूबर, १९८८

नामवरसिंह
आचार्य, भारतीय भाषा-विभाग
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

भृगुवंश नाटक पर कुछ विशिष्ट सम्मतियों के अंश

नाटक की कथावस्तु अत्यन्त प्रासङ्गिक है, अतएव कृति की उपादेयता स्वयं में निर्विवाद है। इस कृति से नाट्यविधा का निश्चय ही गुणात्मक विकास होगा।

—डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
आचार्य एवम् अध्यक्ष
हिन्दी एवम् आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

कथानक में लेखक के गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। इस नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि एक प्राचीन आख्यान को लेकर उसमें आधुनिक मूल्यों का समावेश किया गया है। हिन्दी के नाट्य-साहित्य में यह नाटक अपनी विशिष्टता बनाएगा, यह मेरी धारणा है।

—डॉ० शम्भुशरण शुक्ल, अभीत
हिन्दी विभागाध्यक्ष
पीलीभीत

भृगुवंश के पौराणिक एवम् ऐतिहासिक दस्तावेजों की प्रामाणिकता के साथ वर्तमान राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना इस नाटक की विशेषता है।

—डॉ० सरला शुक्ला
पूर्व प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भृगु का जीवन एक ऐसी परम्परा का परिचायक है जिसमें विद्वत्ता और सामाजिक दायित्व दोनों ही मणिकाञ्चन संयोग के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। भृगुवंश की क्षमताओं को उजागर करने वाला जो सामाजिक परिवेश है वह इस नाटक के माध्यम से सहज ही ग्राह्य है। मानवता की गरिमा को उद्घाटित करने वाला यह नाटक केवल एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व की कथा नहीं है, वरन् मानवीय आदर्शों की स्थापना का प्रयास है।

नाटक के सम्वाद गम्भीर और अर्थपूर्ण हैं; परिवेश युगानुकूल है और इसका सन्देश राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ़ करता है।

डॉ० रमासिंह
पूर्व प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

परिशिष्ट

रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि भार्गव थे

मैंने अपने नाटक भृगुवंश में भृगु, च्यवन, परशुराम, हेमू तथा चरणदास के माध्यम से भृगुवंश की महा-गाथा को काल के पटल पर आलेखित करने का प्रयास किया है, किन्तु इस नाटक के छपते-छपते एक ऐसा सुखद चौंकाने वाला तथ्य मेरी दृष्टि में आया जिसे उजागर करने के लिये पृथक् से यह परिशिष्ट देना ही समीचीन प्रतीत हुआ। यदि यह तथ्य नाटक के छपने से पूर्व ज्ञात हो जाता तो इस नाटक का रूप कुछ और ही होता। संस्कृत साहित्य के आदिकवि, रामायण के अमर गायक तथा राम कथा के माध्यम से भारतीय जीवन-मूल्यों के शंखनाद को जावा, सुमात्रा, बालि, स्याम, ब्रह्मदेश, चीन तथा जापान तक एशिया के सुदूर कोने-कोने तक सुनाने वाले महर्षि वाल्मीकि भी भार्गव-परम्परा के ही एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं जिनकी शब्द-ज्योति यावच्चन्द्रदिवाकरौ आकल्पान्त स्थायी है। मत्स्य-पुराण की साक्षी है :

तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् ।
रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः ॥
वाल्मीकिस्तस्य चरितञ्चक्रे भार्गवसत्तमः
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ॥

—मत्स्यपुराण (बम्बई से सम्वत् १९८० में लक्ष्मी वेङ्कटेश्वर प्रेस से पत्राकार रूप में मुद्रित) पत्र १२-१३ पर अध्याय १२ के श्लोक ४९-५१।

"उन (अज) से दशरथ हुए। उनके चार पुत्र थे जो सभी भगवान् के रूप थे। राम उनमें सबसे बड़े थे। उन्होंने रावण का वध किया तथा रघुओं का वंश बढ़ाया। उनका चरित्र भार्गव श्रेष्ठ वाल्मीकि ने बनाया। उनके (राम के) इक्ष्वाकुवंश को बढ़ाने वाले दो पुत्र कुश तथा लव थे।"

मत्स्यपुराण के इस कथन की पुष्टि महाभारत में भीष्म ने इन शब्दों में की है :

श्लोकश्चायं पुरा **गीतो भार्गवेण** महात्मना ।
आख्याते **रामचरिते** नृपतिं प्रति भारत ॥

—महाभारत, शान्तिपर्व (सम्पादक श्रीपादकृष्ण बेलवल्कर) (पूना, १९६१) अध्याय ५० श्लोक ४०।

"हे युधिष्ठिर! प्राचीन काल में रामचरित काव्य में राजा को यह श्लोक महात्मा भार्गव ने सुनाया था।"

डॉ० दयानन्द भार्गव : आपका जन्म दिल्ली में २२ फरवरी १९३७ को हुआ। आपने प्रभाकर, बी.ए. (अंग्रेजी ऑनर्स), एम.ए. (संस्कृत) की परीक्षायें ससम्मान उत्तीर्ण कर दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की शोधोपाधि प्राप्त की। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय के रामजस कॉलेज के संस्कृत-विभाग में सहायक आचार्य पद, दक्षिण परिसर में सहाचार्य पद, जम्मू तथा इलाहाबाद के केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठों में प्राचार्य पद एवं जोधपुर विश्वविद्यालय के कला, शिक्षा तथा समाज-विज्ञान सङ्काय का अधिष्ठाता पद सुशोभित किया। सम्प्रति आप जोधपुर विश्वविद्यालय के ही संस्कृत-विभाग में आचार्य एवम् अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। आप जोधपुर के विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान, स्थानीय भार्गव सभा तथा संस्कार भारती (नाट्य संस्था) के अध्यक्ष, सर्वभाषा कालिदासीयं की प्रकाशन योजना के प्रधान सम्पादक, लाडनूँ स्थित जैन-विश्व-भारती के शोध-विभाग के मानद सहनिदेशक, जयपुर की राजस्थान संस्कृत अकादमी के सदस्य तथा दिल्ली की अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोधमाला के प्रधान सम्पादक हैं। पूर्व में आप भारत सरकार की केन्द्रीय संस्कृत समिति के तथा जोधपुर विश्वविद्यालय की सिण्डीकेट के सदस्य रह चुके हैं।

डॉ. भार्गव ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत जर्मनी, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में शोध पत्र वाचन हेतु अमेरिका, विश्व संस्कृत सम्मेलन के एक अनुभाग की अध्यक्षता करने हेतु हालैण्ड, एशियन जैन कान्फ्रेन्स में अध्यक्षता करने के लिये थाईलैण्ड तथा विश्व हिन्दू सम्मेलन में भाग लेने हेतु नेपाल की यात्रा की एवं पेरिस, लन्दन, रोम, जेनेवा आदि नगरों में प्राच्यविद्या पर गोष्ठियों में भाग लेकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की।

आपके प्रकाशनों में *Jaina Ethics, Glimpses of Indian Philosophy and Sanskrit Literature,* ऋचा-रहस्य, *जैन तर्कभाषा, तर्क संग्रह* तथा *आधुनिक संस्कृत साहित्य* प्रभृति विश्वविश्रुत हैं। आपके मार्गदर्शन में १५ छात्र पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर विश्वविद्यालयों में उच्च पदों पर आसीन हैं।

भृगुवंश नाटक के एक परिशिष्ट में आपने प्रथम बार यह नयी खोज अन्तःसाक्ष्य तथा बहिःसाक्ष्य के आधार पर निःसन्दिग्ध प्रमाण देकर प्रस्तुत की है कि रामायण के कर्ता आदि कवि वाल्मीकि भार्गव थे। इस खोज ने भार्गव सभा शताब्दी वर्ष में भार्गव-परम्परा की गरिमा को एक नया आयाम दिया है।